दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० 2499 **तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार**, भावनगर वर्ष 28 अंक नं० 10-11

अध्यात्म-भजन

या नित चितवो उठिकै भोर।
मैं हूँ कौन कहाँ तैं आयो, कौन हमारी ठौर।।या०टेक।।

दीसत कौन कौन यह चितवत, कौन करत है शोर।
ईश्वर कौन कौन है सेवक, कौन करे झकझोर।। या नित०।।

उपजत कौन मरै को भाई, कौन डरे लखि घोर।
गया नहीं आवत कछु नाहीं, परिपूरन सब ओर।। या नित०।।

और और मैं और रूप ह्वै, परनति करि लइ और।
स्वांग धरैं डोलौ याहीतैं, तेरी 'बुधजन' भौर।। या नित०।।

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

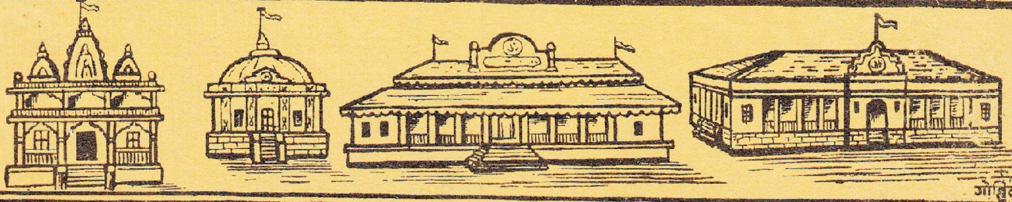

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

मार्च : 1973] वार्षिक मूल्य 4) रुपये **(334-35)** (संयुक्त अंक) एक अंक 35 पैसा [माह-फागुन : 2499

नि.... ज.... भा.... व.... ना

* आत्मवस्तु परम महिमावंत है। यदि आत्मा की महिमा न हो तो फिर जगत में अन्य किसकी महिमा करना ? भाई ! महिमावंत वस्तु ही स्वयं आत्मा है, उसकी महिमा लाकर उसे ध्येय बना, उसे ध्येय बनाने पर सम्यग्दर्शनरूप कार्य अवश्य हो जायेगा।
* मोक्ष के लिये हे जीव ! तुम्हें शुद्धरत्नत्रय करनेयोग्य है; उन रत्नत्रय के कारणरूप ऐसे कारणपरमात्मा को तू अत्यंत शीघ्र भज-वह तू ही है। बाह्य में कहीं तेरा कारण नहीं है; अंतर में तेरा परमस्वरूप है, उसी को तू कारणरूप से भज।
* अहो ! मेरा आत्मा स्वयं परमस्वभावरूप कारणपरमात्मा विराजता है—इसप्रकार निजात्मा को देखनेवाला धर्मात्मा जीव, पर्याय में परभाव होते हुए भी शुद्ध दृष्टि से अपने को अंतर में कारणपरमात्मारूप से देखता है; अत: उसे किसी परभाव में आत्मबुद्धि नहीं होती, उनसे अपने को भिन्न ही देखता है।
* परभाव है, वह परभावरूप है—उस समय मैं कैसा हूँ ? सहज गुणमणि की खान हूँ, पूर्ण ज्ञान और सहज आनंद मेरा स्वरूप है—इसप्रकार परभाव से पृथक्करण करके धर्मात्मा स्वयं को शुद्ध अनुभव करता है, इसलिये वह शुद्धता को भजता है, परभाव को नहीं भजता।
* पर्याय में परभाव होने पर भी उन्हें छोड़कर एक गुणनिधान आत्मा का ही जो अनुभव करता है, वह तीक्ष्णबुद्धि है; इंद्रियों से पार होकर तीक्ष्णबुद्धि द्वारा अर्थात् अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा उसने अपने शुद्ध आत्मा को अनुभव में लिया है।
* शुभराग में अथवा शास्त्र-अध्ययन इत्यादि में रुकी हुई बुद्धि को तीक्ष्णबुद्धि नहीं कहते, वह तो स्थूल है; अज्ञानी को ऐसा स्थूलभाव तो आता है। गुणभेद के विकल्प भी स्थूल हैं। राग से पृथक् हुई चैतन्यसन्मुख बुद्धि को ही तीक्ष्णबुद्धि कहते हैं। ऐसी तीक्ष्णबुद्धि द्वारा सम्यग्दृष्टि जीव मोक्ष को साधता है।

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

संपादक : ब्र० हरिलाल जैन 卐 सह-संपादक : ब्र० गुलाबचंद जैन

मार्च : 1973 ☆ फाल्गुन : वीर नि० सं० 2499, वर्ष 28 वाँ ☆ अंक : 10-11

जीव और शरीर की भिन्नता

आत्मा सदा अमूर्तिक, चैतन्यमूर्ति है, उससे यह जड़-पुद्‌गलमय शरीर भिन्न है। चैतन्यमूर्ति आत्मा से यह अचेतन शरीर भिन्न ही था, भिन्न ही है, और भिन्न ही रहेगा। भिन्न... भिन्न... और भिन्न! तीनों काल भिन्न! चेतन और जड़ पदार्थ का एकमेकपना कभी है ही नहीं, दोनों स्पष्टतया तीनों काल भिन्न ही हैं। अरे जीव! 'जड़ से भिन्न मेरा चेतनस्वरूप है', ऐसी भिन्नता का ज्ञान (निर्णय) तो कर। जीवन में यदि ऐसी भिन्नता का बोध किया होगा, तभी शरीर के वियोग के समय अविनाशी चैतन्य के लक्ष्य से समाधि-जागृति रहेगी। जिसे जड़ की और मिथ्यात्वादि आस्रव की आत्मा से भिन्नता का भान नहीं है, वह तो शरीर में और राग में एकत्वबुद्धि के द्वारा मूर्छित होकर दब जायेगा। भाई! जड़ से और शुभाशुभ विकार से भिन्न मैं नित्य चैतन्यमूर्ति हूँ—ऐसी प्रतीति करके जीवन में उस तत्त्व की भावना तो कर!—ऐसी भिन्नता की भावना द्वारा (-आत्मा में एकत्व के बल से) अतीन्द्रिय आनंद में लीनता होकर तुझे उत्तम समाधि-मरण होगा।

(नियमसार, गाथा 92 के प्रवचन से)

ज्ञानी का ज्ञान

ज्ञानी के ज्ञान में पर का निमित्तकर्तापना नहीं है

पर का निमित्तकर्तापना भी अज्ञानी के क्रोधादि भावों में है। ज्ञानभावरूप में परिणमन से वह भी छूट जाता है। भाई! तेरा स्वरूप कैसा है, इसको तो विचार कर, तब तुझे ख्याल में आयेगा कि इसमें पर का कर्तृत्व किसी भी प्रकार नहीं समा सकता। अरे! विकार का कर्तृत्व भी जिसमें नहीं समा सकता, उसमें पर के कर्तृत्व की तो बात कैसी ? वस्तुस्वरूप की स्वतंत्रता और पर से भिन्नता समझे बिना एक भी बात सच्ची नहीं समझी।

[श्री समयसार, गाथा 100 पर पूज्य स्वामीजी का प्रवचन]

चैतन्यस्वरूप आत्मा परद्रव्य का कर्ता किसी प्रकार नहीं है। अशुद्ध योग और उपयोग कर्म में निमित्त है, किंतु ज्ञानी की शुद्ध चेतना उस अशुद्ध योग-उपयोग से भिन्न है, इसलिये ज्ञानी तो निमित्तरूप भी कर्म का कर्ता नहीं है। अज्ञानी अशुद्ध रागादि भावों का कर्ता होता है किंतु कोई आत्मा परद्रव्य का कर्ता नहीं है। किसी के भी ज्ञान या अज्ञानभाव से पर का कर्तृत्व नहीं है। अज्ञानभाव में अपने रागादि भाव का कर्तृत्व है और ज्ञानभाव में विकार रहित अपने शुद्धभाव का ही कर्तृत्व है।

कर्ता-कर्म का स्वरूप समझने के लिये व्याप्य-व्यापकत्व का महान सिद्धांत है। जहाँ तन्मयत्व हो, वहाँ ही व्याप्य-व्यापकत्व होता है और जहाँ व्याप्य-व्यापकत्व हो, वहीं कर्ता-कर्मत्व होता है। कर्ता स्वयं अपने कार्य में प्रसरित होकर उसरूप हो जाता है। मिट्टी के रजकण अपने घड़ारूप कार्य में प्रसरित होकर उसरूप होते हैं; इसलिये वे उसके कर्ता हैं, किंतु जो कुम्हार उसको करता है, वह कुम्हार स्वयं घड़ा हो जावे, तब कुम्हार का अस्तित्व ही न रहे, उसीप्रकार पुद्गल की कर्म आदि रूप अवस्था में पुद्गल प्रसरित होकर उसरूप स्वयं होता है, इसलिये वह ही उसका कर्ता है। यदि चेतनरूप जीव उस जड़ कर्म को करे तो वह स्वयं जड़रूप हो जावे, तब जीव का अस्तित्व ही नहीं रहे। अरे भाई! अचेतन का कर्ता होने से तेरे

अस्तित्व ही का लोप हो जाता है, जड़-चेतन के भिन्न अस्तित्व देखने से कर्ता-कर्म की बुद्धि छूट जाती है। चेतनतत्त्व अपने चेतनभावरूप कार्य द्वारा सुशोभित होता है। यह मोक्षमार्ग का कार्य है, वह ही धर्मी का कार्य है।

परिणामी वस्तु का परिणाम उसका धर्म है। उस परिणाम का कर्ता अन्य नहीं हो सकता। जो परिणाम होता है, उसका कर्ता त्रिकाली द्रव्य अभेदरूप कहलाता है किंतु वस्तुतः पर्यायस्वभाव से ही उस परिणाम का कर्तृत्व है। जीव के परिणाम का दाता अन्य कोई नहीं है। द्रव्य-गुण-पर्यायरूप वस्तुस्वभाव है। जैसे द्रव्य-गुण का दाता अन्य कोई नहीं है, उसीप्रकार पर्याय का दाता अन्य कोई नहीं है।

यह आत्मा अन्य की सहायता के बिना स्वयं अपने से स्वसंवेदनप्रत्यक्ष हो सकने योग्य है। प्रत्यक्ष होने का उसका स्वभाव है। प्रवचनसार में उसका सुंदर वर्णन अलिंगग्रहण के अर्थ में किया है।

जीव अपने पर्यायस्वभाव से ही अपनी ज्ञानपर्यायरूप उत्पन्न होता है, गुरु उस ज्ञानपर्याय का दाता नहीं है। उपकार की भाषा में भले ही ऐसा कहा जावे कि गुरु ने यह ज्ञान दिया किंतु सिद्धांत में वस्तुस्वरूप ऐसा नहीं है।

ज्ञानस्वरूपी जीव स्वयं अपने स्वरूप से ही उत्पाद-व्ययरूप परिणमता है। वह उत्पाद-व्यय धर्म ध्रुव को लेकर नहीं है और न पर को लेकर है।

यहाँ आचार्यदेव कहते हैं कि यदि ज्ञानानंदरूप आत्मा का स्वभाव विकार को करे तो विकार का कर्तृत्व कभी नहीं छूटे। इसलिये शुद्ध स्वभाव में तो विकार का कर्तृत्व नहीं है और इस स्वभाव में जिसकी दृष्टि है, वह भी विकार का कर्ता नहीं है।

आत्मा पर की पर्याय को करे तो आत्मा पररूप हो जाये; परवस्तु आत्मा का परिणाम करे तो वह परवस्तु आत्मारूप हो जाये—इसप्रकार दोनों द्रव्य का अस्तित्व नष्ट हो जावे। इसलिये परिणाम-परिणामी भाव से द्रव्य स्वयं ही अपने परिणाम का कर्ता है; एक द्रव्य अन्य द्रव्य का कर्ता नहीं है।

देव-गुरु की सतत सेवा में लगे हुए शिष्य को ज्ञानपरिणाम के दाता वे देव-गुरु नहीं हो सकते। शिष्य का आत्मा स्वयं ही अपने परिणाम स्वभाव द्वारा अपने ज्ञानपरिणाम को उत्पन्न करता है, उसका कोई अन्य न दाता है, न कर्ता है। जो अज्ञानी स्वयं ज्ञानपरिणामरूप नहीं हो,

वह चाहे जितने समय तक देव-गुरु को सेवे तो भी देव-गुरु उसके ज्ञान के दाता नहीं हो सकते। जीव स्वयं अपने ज्ञानपरिणामरूप परिणमे, तभी वह ज्ञानी होता है।

त्रिकाली द्रव्य में पर के साथ निमित्त-नैमित्तिकपना नहीं है। यदि त्रिकाली द्रव्य निमित्तरूप हो तो वह कभी नहीं छूटे, सदा ही निमित्तरूप रहा करे अर्थात् उसका स्वभाव हो जावे और जीव को कर्म का निमित्तत्व कभी नहीं छूटे। द्रव्य में पर का निमित्त माननेवाले जीव को कभी संसार से छुटकारा नहीं होता क्योंकि उसे परसन्मुखता छोड़कर स्वसन्मुख होने का अवकाश ही नहीं रहा।

अब पर्याय की बात; पर्याय में भी योग और उपयोग (रागादि अशुद्ध भाव) ही कर्म के निमित्त हैं; वे अशुद्ध योग-उपयोग क्षणिक हैं, त्रिकाली नहीं हैं। उन क्षणिक अशुद्ध योग-उपयोग का कर्तृत्व अज्ञानी के है, ज्ञानी के उनका कर्तृत्व नहीं है, इसलिये अज्ञानी के ही योग और रागादिभाव कर्म के निमित्त हैं, धर्मी के तो योग और रागादि भाव अपने में हैं ही नहीं, उसके तो ज्ञान-आनंदस्वरूप अपना भाव है, वह उसका ही कर्ता है, रागादि भाव तो उसके ज्ञान से अन्य परज्ञेय में जाते हैं।

अज्ञानी अज्ञानभाव में भी मात्र रागादि का कर्ता होता है; पर की अवस्था को वह नहीं करता है, पर के साथ निमित्तपना उसके रागादि में है किंतु पर में तन्मय होकर उसे नहीं करता है। अज्ञान के छूटते ही निमित्तकर्तापना भी नहीं रहता।

धर्मी की अपनी ज्ञानचेतना में रागादि या परवस्तुएँ ज्ञेयरूप निमित्त हैं। वह स्वयं तो उनके कर्तारूप निमित्त नहीं हैं किंतु वे उसके ज्ञान में निमित्त हैं। ज्ञान यह जानता है कि इस काल में यह योग-उपयोग ज्ञान से भिन्नरूप वर्तता है और पर का कार्य पर में वर्तता है। मेरी ज्ञानपरिणति मेरे में वर्तती है। पर के साथ या रागादि के साथ उसका संबंध नहीं है। इसप्रकार ज्ञानी की परिणति अंदर आत्मा में प्रविष्ट हो गई है, उसमें बाहर का निमित्तत्व भी नहीं है।

सामने वस्तु में कार्य तो होता ही है, वह उसका उपादान है। यहाँ ज्ञानी अपने उपादान से ज्ञानभावरूप परिणमा, उसके तो दूसरे के साथ निमित्तकर्ता का आरोप भी नहीं रहा, कर्ता का आरोप कैसे आवे? जो अपने में रागादि अशुद्ध भाव को उपादानपने से करता है, वह ही अन्य का निमित्तकर्ता है अर्थात् अज्ञानी का अशुद्धभाव ही पर के कार्य में निमित्त है। धर्मात्मा के अपने उपादान में रागादि तो है नहीं, उनके तो शुद्ध ज्ञानभाव का ही कर्तृत्व है, इसलिये पर के

कार्य में निमित्तत्व का आरोप भी उसके नहीं आता।

परिणाम-परिणामीभाव से पर के साथ कर्तृत्व तो सबमें से निकाल दिया। परिणाम-परिणामीभाव से कर्तृत्व एक स्वद्रव्य में ही होता है।

निमित्त-नैमित्तिक भाव में तीन पक्ष हैं—

1. त्रिकाली स्वभाव में दूसरे के साथ निमित्तकर्तापना भी किसी जीव के नहीं है।

2. ज्ञानी के ज्ञानमयभाव में दूसरे के साथ निमित्तकर्तापना नहीं है।

3. पर के साथ निमित्तकर्तापना मात्र अशुद्ध योग तथा रागादिभावों में है।

अशुद्धभाव का क्षणिक कर्तृत्व अज्ञानी के अज्ञानभाव में है, इसलिये अज्ञानी के ही क्षणिक योग-रागादि अशुद्धभावों में ही पर के साथ निमित्तकर्तापना है।

जहाँ भेदज्ञान हुआ, पर से भिन्न आत्मा को जाना और रागादि अशुद्ध भावों से भी भिन्न ज्ञानानंदस्वभाव जाना, वहाँ अज्ञानजनित निमित्त कर्तापना भी छूट जाता है और उसके निर्मल ज्ञानादि शुद्धभाव का ही कर्तृत्व रहता है।

देखो भाई ! यह बात समझी जा सकनेयोग्य है। जो न समझ सके, उन्हें सम्यग्दर्शन कैसे हो ? इसलिये अपना स्वरूप समझने का उद्यम करो। एक ज्ञानी और एक अज्ञानी दोनों हाथ में तलवार लेकर लड़ते हों, तब भी उस समय वस्तुत: ज्ञानी अपने ज्ञानभावरूप ही परिणमन करता हुआ उसी में तन्मयत्व करता है। उस समय के क्रोधादि या कम्पन का कर्तृत्व उसके ज्ञान में नहीं है और तलवार का निमित्त कर्तृत्व भी उसके ज्ञान में नहीं है। उसी समय अज्ञानी अपने ज्ञानस्वभाव को भूलकर अज्ञान से क्षणिक क्रोधादि भावों में तन्मयत्व करता है और तलवार की क्रिया में उसके निमित्तकर्तापना है। देखो, बाह्य में समान दिखायी दें किंतु ज्ञानी और अज्ञानी के अंतरंग में कितनी भिन्नता है ?

ज्ञानी तो उस समय ही अपने ज्ञानभाव को तलवार से और क्रोधादि से अत्यंत भिन्न अनुभव करता हुआ मोक्षमार्ग में चल रहा है और अज्ञानी उस समय अपने को क्रोधरूप ही तथा तलवार का कर्तारूप ही अनुभव करता हुआ अज्ञानभाव को ही करता हुआ संसारमार्ग को कर रहा है। ज्ञानभाव और अज्ञानभाव की भिन्नता को ज्ञानी ही पहचानता है, अत: वह रागादि अज्ञानभावों का कर्ता नहीं होता और वह पर का निमित्तकर्ता भी नहीं है।●●

समयसार अर्थात् अनुभूतिरूप परिणमित आत्मा

समयसार की 144 वीं गाथा के प्रवचन का एक भाग आपने पहले अंक में पढ़ा। यह दूसरा भाग भी आपको अनुभूति की गहराई में ले जायेगा।

सम्यग्दर्शन के लिये ज्ञानपर्याय द्वारा आत्मा के स्वभाव का निर्णय करने की यह बात है। भगवान ने आगम में ज्ञानस्वभाव का निर्णय करने को कहा है। ज्ञान को भूलकर राग और शरीर के प्रेम से तो इस जीव ने भव धारण कर-करके भव-चक्र में अनंत शरीर परिवर्तित किये हैं। शरीर से, राग से और जगत से भिन्न ज्ञानस्वभाव है-वह मैं हूँ—इसप्रकार एक बार निर्णय करे तो दिशा पूर्णरूप से परिवर्तित हो जाये। 'ज्ञानस्वभाव मैं हूँ'—ऐसा किसी अन्य के कारण अथवा राग के कारण नहीं जानता है, परंतु स्वयं के ज्ञान द्वारा ही ज्ञानस्वभाव को स्वयं जानता है। वीतरागी शास्त्र भी कहते हैं कि तेरा ज्ञानस्वभाव शास्त्र के अवलंबन से रहित है। इसप्रकार प्रमाण से निर्णय करने के पश्चात् ज्ञान को अंतर में ले जाने पर सत्य आत्मा वेदन में आता है, और तब ही सम्यग्ज्ञानरूप से भगवान आत्मा प्रगट प्रसिद्ध होता है। मति-श्रुतज्ञान में आत्मा का अतीन्द्रिय स्वसंवेदन करने की शक्ति है। स्वसंवेदन की ओर ज्ञान झुका, तब वह निर्विकल्प अतीन्द्रिय हो जाता है और अनंत गुणों के आनंद का वेदन करता है... अहो! ऐसा आत्मा मैं—इसप्रकार साक्षात् वेदनपूर्वक सम्यग्दर्शन होता है।

सम्यग्दर्शन होते समय अनुभूति में एकमात्र आत्मा की प्रसिद्धि है, परपदार्थ की प्रसिद्धि उसमें नहीं है; परपदार्थ की प्रसिद्धि में मन-इंद्रिय का अवलंबन है, उसको छोड़कर मति-श्रुतज्ञान में अपने ज्ञानस्वभाव का अवलंबन लिया, तब अतीन्द्रियज्ञान में भगवान आत्मा प्रसिद्ध होता है-प्रगट अनुभव में आता है।

इंद्रिय की ओर झुका हुआ ज्ञान भगवान आत्मा को प्रसिद्ध नहीं कर सकता। उसीप्रकार मन के विकल्पों की ओर झुका हुआ (उनसे लाभ माननेवाला) ज्ञान भी विकल्पातीत ज्ञानस्वभाव का अनुभव नहीं कर सकता। ज्ञानस्वभावी भगवान आत्मा को प्रसिद्ध करने के लिये अर्थात् साक्षात् अनुभव में लेने के लिये उसकी ओर ज्ञानपर्याय लाना चाहिये, उसके

सन्मुख होकर ही उसको जाना जा सकता है। ज्ञान अंतर्मुख होकर आत्मा का अनुभव करे, तब उस अनुभूति में किसी नय के विकल्प नहीं रहते हैं, वहाँ नयपक्ष का आलंबन नहीं है, वहाँ एक ज्ञानस्वभाव का ही अवलंबन है, पर्याय अंतर्मुख होकर उसमें एकाग्र हो गई है, उसी में वीतरागी आनंद का ही वेदन है, कोई आकुलता नहीं है। अहा! ऐसी अनुभूति होने पर सम्यग्दर्शन होता है।

आत्मा का सुखस्वभाव अनाकुलतामय है और विकल्प तो आकुलता उत्पन्न करनेवाले होने से दु:खरूप हैं। ज्ञान में दु:ख अथवा आकुलता नहीं होती; विकल्पों में सुख नहीं होता, दोनों की जाति भिन्न है। विकल्प चाहे आत्मा के संबंध में हो, परंतु उसमें आकुलता है; विकल्प से भिन्न ज्ञान है, उस ज्ञान के अंतर्मुख होने पर विकल्परहित निराकुल अतीन्द्रिय शांति का वेदन होता है, उस वेदन को धर्मात्मा ही जानते हैं। अनुभूति में धर्मात्मा को केवलज्ञान का खजाना खुल गया है। अहा! ज्ञानस्वभावी भगवान आत्मा तो निर्विकल्प आनंद की पेटी है, आनंद का पिटारा है। जिसप्रकार पिटारे में वैभव भरा हो, उसे देखकर लोग प्रसन्न होते हैं; उसीप्रकार चैतन्य के पिटारे में अतीन्द्रिय आनंद इत्यादि अनंत गुणों का खजाना भरा है, उसे अंतर्मुखज्ञान द्वारा देखकर धर्मात्मा जीव प्रसन्न होते हैं, आनंदित होते हैं। आत्मसन्मुख परिणाम, वह सम्यग्दर्शन का कारण है, आत्मसन्मुख परिणाम स्वयं शांति है, वह स्वयं सम्यग्दर्शन है, वह स्वयं सम्यग्ज्ञान आदि है। साधक भूमिका में अभी रागादिभाव है, वह अंतर के स्वसन्मुख परिणाम से भिन्न है। धर्मी की अनुभूति से वह भिन्न हैं। सम्यग्दर्शन की अनुभूति में कोई राग या विकल्प नहीं है। श्रुतज्ञान के साधन का विकल्प, ज्ञान का स्वरूप नहीं है। अर्थात् ज्ञान जब अंतर में ढला, तब सभी विकल्प भिन्न हो गये, बाहर रह गये। एक बार विकल्प से पृथक् हुआ, वह पुन: विकल्प के साथ कभी एकरूप से परिणमित नहीं होता। ज्ञानरूप निजरस द्वारा ही आत्मा प्रसिद्ध होता है–जाना जाता है। इंद्रियों की सहायता से अथवा विकल्प के अवलंबन से आत्मा को नहीं जान सकते। आत्मा की अनुभूति पक्षातिक्रांत है, विकल्पातीत है, वह अंतर के अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा ही स्वसंवेदन में आती हैं। ऐसी अनुभूति करनेवाला आत्मा मानों विश्व के ऊपर तैरता हो, इसप्रकार स्वयं को सर्व से भिन्न अनुभव करता है। स्वयं जिस तत्त्व को अनुभव किया, वैसा ही तत्त्व सर्वज्ञ भगवान ने कहा है, ऐसा वह नि:शंकरूप से जानता है। अनुभूति होने पर 'निर्मल पर्याय द्रव्य में प्रसरित हो गई'—ऐसा कहा

जाता है। राग से ज्ञान भिन्न रहता है अर्थात् वह तैरता है। ज्ञान राग में तन्मय होकर डूबता नहीं है परंतु राग से पृथक् का पृथक् तैरता ही तैरता रहता है।

राग से भिन्न आत्मा की अनुभूति के समय ही आत्मा सत्यस्वरूप से दिखायी देता है, श्रद्धा में आता है और जानने में आता है, इसप्रकार अनुभूतिस्वरूप परिणमित आत्मा ही स्वयं सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है और अनंत गुणों का स्वाद उसमें समाविष्ट है।

श्रुतज्ञान में आकुलता नहीं है, परंतु विकल्प में आकुलता थी। जब श्रुतज्ञान विकल्प से पार होकर अंतर्मुख हुआ, तब निर्विकल्प आनंद का वेदन हुआ–यह अनुभव की विधि है, सर्वप्रथम हित का मार्ग यही है। ऐसे अनुभव के बिना अन्य किसी के अवलंबन से आत्मा का हित नहीं होता। तेरा कार्य स्वाधीन रूप से तुझसे होता है। संतों ने उसकी रीति बतलाई है परंतु उसे करना तेरे आधीन है। जिसने अंतर्मुख होकर आत्मा का अनुभव किया, वह जीव हित के मार्ग पर आकर केवलज्ञान और सिद्धपद का पात्र हुआ... वह 'समयसार' है।

गुण का स्वभाव

गुण का स्वभाव गुणरूप रहने का है, दोषरूप होने का नहीं है। ज्ञानगुण का स्वभाव ज्ञानरूप रहने का है, अज्ञानरूप होने का उसका स्वभाव नहीं है; सुख का स्वभाव सुखरूप रहने का है, दुःखरूप होना उसका स्वभाव नहीं है। प्रभुत्व का स्वभाव प्रभुतारूप रहने का है, पामर होना प्रभुता का स्वभाव नहीं है।—इसप्रकार आत्मा के प्रत्येक गुण का स्वभाव गुणरूप–शुद्धतारूप होना है, परंतु दोष या अशुद्धतारूप होना किसी गुण का स्वभाव नहीं है। इसलिये मलिनता–विकार या दोष, वह वास्तव में आत्मा के गुण का कार्य नहीं है, इसलिये उसे वास्तव में आत्मा नहीं कहते। स्वशक्तिसन्मुख होकर निर्मल भावरूप परिणमित हुआ, वही वास्तव में आत्मा है।

[—वर्तमान प्रगट दशा में पराश्रयरूप अशुद्धता होती है, वह तो पर्याय का अशुद्ध धर्म है, द्रव्य का गुण नहीं है; इसलिये अशुद्धता, व्यवहार अभूतार्थ है; वह मोक्षमार्ग में आश्रय करनेयोग्य नहीं है, आश्रय तो नित्य भूतार्थ का ही करना चाहिये।]

धर्मात्मा की अनुभूति का वर्णन

[गतांक से आगे]

'मेरा अस्तित्व तो ज्ञानसत्तारूप है'—ऐसा धर्मी अनुभव करता है। हे भाई! भवरोग को मिटाने की औषधि तो यह है। राग के कर्तृत्वरूप जो रोग है, वह आत्म-अनुभव द्वारा मिटता है। सम्यग्दर्शन में धर्मी को अखंड आत्मा का भान होने पर जो ज्ञान-पर्याय प्रगट हुई, उसका वह कर्ता है, परंतु उस काल में रागादि होता है, वह यथार्थ में धर्मी का कार्य नहीं है। अत: कहते हैं कि—

करे करम सोही करतारा, जो जाने सो जानन हारा।
जाने सो करता नहीं होई, करता सो जाने नहीं कोई॥

चैतन्य-आनंद के वेदन के समक्ष धर्मी को विकल्प में आकुलता दिखायी देती है, अहा, चैतन्य की शांति का जहाँ वेदन हुआ, वहाँ रागादि की उस शांति के साथ तुलना करने पर धर्मी को तो रागादि में आकुलता ही भासित होती है, अत: धर्मी उसका कर्ता नहीं होता। राग का कर्ता हो, वह चैतन्य की शांति को नहीं जान सकता। चैतन्य का वीतराग अकषाय शांतरस जिसने नहीं चखा है, उसे शुभराग में शांति लगती है। परंतु धर्मी तो चैतन्य की शांति के सामने शुभराग को दु:ख और आकुलता ही जानता है।

जितना वीतराग अकषाय शांतरस, उतना आत्मा; ऐसा वस्तु का स्वभाव है। शांत चैतन्यस्वभाव आत्मा है, उसके आश्रय से जो अकषाय वीतरागदशा प्रगट हुई, उसका नाम जैनधर्म है, और वह मोक्ष का मार्ग है। यह आत्मा और यह राग—इसप्रकार दोनों का ज्ञान धर्मी को वर्तता है; दोनों भाव भिन्न हैं, उन्हें दोरूप से जानना, वही सच्चा ज्ञान है। जो राग और ज्ञान को भिन्न जानता है, वह राग का कर्ता नहीं होता और जो राग का कर्ता होकर रुक गया है, वह जीव ज्ञान और राग की भिन्नता को नहीं जानता। राग से पृथक् चैतन्यभाव धर्मी की दृष्टि में तैरता है, वहाँ राग के वेदन को वह चैतन्य से भिन्न जानता है, इसलिये स्वयं चैतन्यभावरूप रहता हुआ रागादिभावों का जाननेवाला ही रहता है-परंतु कर्ता नहीं होता। अत: जो ज्ञाता है, वह कर्ता नहीं है।

अहो! ज्ञानी का मार्ग जगत से भिन्न है। इसका माप बाहर से नहीं होता। विकल्पवाला जीव धर्मी के अंतर की निर्विकल्प चैतन्यप्रतीति का माप नहीं कर सकता। धर्मी ने स्वसंवेदन द्वारा चैतन्य का निधान खोलकर जो ज्ञानपर्याय प्रगट की है, वह ज्ञान रागादि को भी जानता है परंतु रागरूप होकर उसे करता नहीं है। वह राग को जानता हुआ ज्ञान तो ज्ञानरूप ही रहता है और स्वयं ज्ञानरूप ही अपना अनुभव करता है–इसका नाम धर्मात्मा की ज्ञप्तिक्रिया है–वह धर्म है।

ज्ञान में राग का कण नहीं समा सकता, वहाँ बाह्य के अन्य कर्मों की क्या बात? स्व में पर की नास्ति है, उसीप्रकार ज्ञान में राग की नास्ति है, जीव का चेतनस्वभाव है; राग का कण भी जीव का नहीं है–भगवान के द्वार में प्रवेश करने पर यह मार्ग है। अहो! भीतर का मार्ग कितना सुंदर है! उसकी कोई पशु सदृश अज्ञानी–जन निंदा करे तो भी हे जीव! उसे सुनकर तू खेदखिन्न मत हो... और ऐसे सुंदर मार्ग को मत छोड़! तू तेरे अंतर में ऐसे मार्ग को साध लेना। अरे, राग का ही अनुभव करनेवाले राग को ही खानेवाले पशु सदृश जीव ऐसे वीतरागमार्ग को कहाँ से जानेंगे? इसलिये ऐसे जीव निंदा करें, तो भी तू ऐसे अपूर्व मार्ग का भक्ति से आदर करना। अंतर में चैतन्यपरमेश्वर विराजते हैं, प्रत्येक आत्मा परमेश्वरस्वरूप है, परंतु उसका भान नहीं है, अभ्यास नहीं है, इसलिये राग के कर्तृत्व में रुक गया है। धर्मी तो ज्ञानस्वभाव को अनुभवता हुआ केवल ज्ञाता है। सम्यग्दृष्टि की पदवी कोई अलौकिक है, उसका मूल्य जगत को ज्ञात नहीं है। सम्यग्दर्शन के पश्चात् चारित्रदशा की महिमा की तो क्या बात? चारित्रवंत मुनि तो परमेश्वर है–पंचपरमेष्ठीपद में वे सम्मिलित हैं। 'णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं' इसप्रकार धवला में त्रिकालवर्ती सर्व साधुओं को नमस्कार किया है। क्या अकेले रागवाले साधु की वंदना करते हैं? नहीं; अंतर में जिन्हें राग से भिन्न वीतरागी चेतनपर्याय प्रगट हुई है, उन्हें नमस्कार करके उनका आदर किया है। पांच परमेष्ठी में वीतराग–विज्ञान को नमस्कार किया है। केवली भगवान ज्ञाता हैं, उसीप्रकार सम्यक्त्वी का आत्मा भी ज्ञाता है, उसको राग है, परंतु वह ज्ञान से भिन्नरूप है। ज्ञानस्वरूप आत्मा का अनुभव करना, वह अरिहंत का मार्ग है।

राग तो अंधा है, वह कहीं स्व–पर को नहीं देखता है। ज्ञान ही चेतता–जागता है, वह स्व–पर को जानता है। जाननेरूप ज्ञान में राग का कर्तृत्व नहीं है। जिसप्रकार केवली प्रभु के केवलज्ञान में राग का कर्तृत्व नहीं है, उसीप्रकार सम्यक्त्वी के ज्ञान में भी राग का कर्तृत्व नहीं है; जिसप्रकार केवली प्रभु को जगत का राग परज्ञेयरूप से ही है, वह ज्ञान में तन्मयरूप से नहीं

है। ज्ञान का और क्रोधादि का परिणमन अत्यंत भिन्न है। ज्ञान परिणाम में क्रोध नहीं है और क्रोध-परिणमन में ज्ञान नहीं है; दोनों बिल्कुल भिन्न हैं।

अरे जीव! तेरे में भगवानपना है; ज्ञानलक्ष्मीवाला भगवान तू स्वयं है। 'भगवान' कहते हुए तू संकोच को प्राप्त मत हो। सम्यक्त्वी स्वयं के आत्मा को चैतन्यभगवानरूप से अनुभव करता है। राग है, उसे जानता है, परंतु ज्ञान से भिन्नरूप से जानता है। अत: ज्ञाता, वह राग का कर्ता नहीं है।

अहो! समयसार तो समयसार है। इस असार-संसार में एक 'समयसार' ही सार है। समयसार अर्थात् मात्र शब्द नहीं परंतु उनके वाच्ययप शुद्ध आत्मा, वह समयसार है। राग से भिन्न ज्ञानभावरूप से परिणमित हुआ आत्मा वह स्वयं समयसार है। वह द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म से रहित है। द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म तीनों ही ज्ञान से बाह्य हैं। स्वानुभूति द्वारा ऐसे ज्ञानस्वरूप आत्मा का अनुभव करनेवाला जीव स्वयं समयसार है।

जय कुन्दकुन्ददेव.... जय समयसार.... जय गुरुदेव!

स्वानुभव की प्रेरणा

हे जीव, तू आत्मा का रसिक बन, आत्मरसिक बनकर राग से भिन्न ज्ञान का अनुभव कर। तूने अनादिकाल से आत्मा को भूलकर पर से प्रेम किया, पर को अपना माना। अब मोह को छोड़कर आत्मप्रेमी बन। अंतर्मुख उपयोग द्वारा अपने आत्मा को देख। भाई! यह उत्तम अवसर आया है, इससे अच्छा कौन सा काल आनेवाला है? प्रतिबोध का यह सुअवसर मिला है, संतों ने यह स्पष्ट भेदज्ञान कराया है, तो अब चैतन्य का रसिक बनकर मोह को छोड़ और आत्मा को चैतन्यस्वरूप अनुभव में ले।

हे जीव! यह अवसर आया है, इसलिये तू अब अन्य सभी प्रपंच छोड़कर इस अनुभव के लिये उद्यमी बन, अपने सभी प्रयत्नों को इसमें लगा। एकबार यह स्वानुभव करे तो तेरा संसार का अंत निकट आवे। स्वानुभव के बिना अन्य किसी उपाय से संसार का अंत हो, ऐसा नहीं है। संसार के संयोग से एकबार अलग हो, अंतरंग के विकल्पों से भी अलग हो और उपयोगस्वरूप में ही तन्मय होकर रह, तभी स्वानुभव और सम्यग्दर्शन होगा।

अत्यंत मधुर चैतन्यरस

[मधुर चैतन्यरस से विपरीत क्रोधादि का कर्तृत्व अज्ञान से ही है। भेदज्ञान द्वारा मधुर चैतन्यरस का स्वाद चखने से उन क्रोधादि का कर्तापना छूट जाता है, भेदज्ञान की उस पद्धति को संत बताते हैं।]

[समयसार गाथा 96-97 पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन]

आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसकी अनुभूति तो निर्विकार ज्ञानमात्र है, असीम शुद्ध चैतन्यधातुमय आत्मा भावक होकर क्रोधादिरूप अपने को अनुभव करे, यह तो अनुचित है। शुद्ध चैतन्य भावक हो और क्रोध उसका भव्य हो, यह उचित नहीं है, योग्य नहीं है, ऐसा अनुचित भाव्य-भावकपना तो अज्ञान से ही प्रतिभासित होता है। अपने सहज चैतन्यभाव को भूलकर 'मैं क्रोध हूँ, मैं क्रोध हूँ' ऐसी मान्यता से अज्ञानी अपना अनुभव करता हुआ क्रोधादि भाव का कर्ता हो जाता है। इसप्रकार विकार का कर्तृत्वपना अज्ञान से ही है।

'अहो! मेरा चैतन्यरस तो अत्यंत मधुर है। यह मधुर चैतन्यरस क्रोध रागादि समस्त अन्य भावों से भिन्न जाति का है, चैतन्य के स्वाद और रागादि के स्वाद में कुछ भी समानता नहीं है, दोनों की जाति एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न है।' ज्ञानी होने से जीव को ऐसा भेदज्ञान होता है, तब से वह अपने ज्ञानभाव के अतिरिक्त क्रोधादि भाव को किंचित् भी अपने में अनुभव नहीं करता। अतः वह उनका कर्ता नहीं होता। इसप्रकार ज्ञान द्वारा ही क्रोधादि की कर्तृत्वबुद्धि छूट जाती है। चैतन्य के ज्ञेयरूप में ज्ञात राग का स्वाद चैतन्य से भिन्न है किंतु अज्ञानी उस राग के स्वाद को चैतन्य के स्वाद में मिलाकर ऐसा अनुभव करता है कि मैं चैतन्य हूँ और ये क्रोधादिभाव मेरे कार्य हैं, ऐसा मानकर वह चैतन्य और राग दोनों को एकरूप में अनुभव करता है।

अरे भाई! उन दोनों में कर्ता-कर्म का संबंध मानना अनुचित है, चैतन्य में राग का कर्तृत्व सुशोभित नहीं होता। चैतन्य-अमृतरूप भगवान आत्मा मृत, जड़ कलेवर का कर्ता बने—यह बात इसको शोभा देती है? जैसे किसी मनुष्य को भूत लगा हो तो उसकी चेष्टा ही

सर्वथा बदलकर भूत की तरह अत्यंत भयंकर चेष्टा हो जाती है, यह क्या उस मनुष्य को शोभा देता है ? नहीं, यह तो अमानवीय व्यवहार है। अत: मनुष्योचित नहीं है। वैसे ही शांत निर्विकार चैतन्यप्रभु की चेष्टाएँ भी शांत, चैतन्यभावरूप होती हैं, उसके बदले 'मैं क्रोध' ऐसा मिथ्यात्वरूप भूत बनकर अनेक प्रकार के राग, द्वेष, पुण्य, पाप, क्रोधादि भावों की चेष्टा करता है, और उन्हीं भावोंरूप अपने को अनुभव करता है। आचार्यदेव कहते हैं कि अरे भाई! यह भूत तुझे कहाँ से लगा ? चैतन्य के अमृत एवं राग के विष में एकत्व की दुर्बुद्धि तुझे कहाँ से हुई ? अरे जीव! तेरे निर्विकार चैतन्य की चेष्टा में क्रोधादि विकार का कर्तृत्व कैसे शोभे ? जैन-वणिक को माँसाहार शोभा देगा ? कभी नहीं; उसीप्रकार चैतन्य के भाव में विकार का कर्तृत्व कभी शोभा नहीं देता, फिर भी यदि शोभा देनेवाला माने तो अज्ञान है। क्रोधादि भावों की चेष्टाएँ चैतन्य के योग्य नहीं है। अत: हे भाई! तू चैतन्य और क्रोध को अत्यंत भिन्न जानकर अज्ञानमय चेष्टाओं को छोड़! क्रोध का मुख्य अर्थ यहाँ ज्ञातास्वभाव की अरुचि और रागादि भले हैं / करने योग्य हैं—ऐसी रुचि को ही क्रोध कहा है।

जैसे कोई अज्ञानी भैंसा का ध्यान करते-करते इतना तल्लीन हो गया कि 'मैं बड़े सींगोंवाला मोटा भैंसा हूँ' ऐसा अपने को भैंसारूप ही अनुभव करने लगा, और उसे लगा कि मैं बड़े कमरे के द्वार से बाहर नहीं निकल सकता! वह मनुष्य है और द्वार से बाहर भी निकल सकता है किंतु अज्ञानवश अपने को भैंसा ही मानकर कमरे में ही बैठा रहता है; उसीप्रकार अज्ञानी इंद्रिय और मन के विषयरूप परद्रव्य को जानता हुआ उनके विकल्पों में इतना तल्लीन हो गया कि वह यह भूल गया कि मैं ज्ञाता शुद्ध चैतन्यधातु ही हूँ। विकल्परूप ही अपने को अनुभव करते हुए उसने उसमें ही शुद्ध चैतन्यधातु को स्थित कर दिया। वह वस्तुत: चैतन्यधातु है और विकल्पों से बाह्य भिन्न ही रहने का उसका स्वभाव है किंतु परज्ञेयों में मोह कर अपने ज्ञान को ढँक दिया है और अज्ञानी होकर 'मैं क्रोध, मैं शरीर' आदि अज्ञानभाव का कर्ता होता है।

जहाँ भेदज्ञान हो गया, वहाँ अज्ञानजनित कर्तापना छूट जाता है। भेदज्ञान द्वारा धर्मी जीव अपने आत्मा को चैतन्यरसरूप अनुभव करता है। जिसने राग से सर्वथा भिन्न प्रकृतिवाला अपूर्व चैतन्यरस चख लिया, उसने कषाय के कषैले रस को अपने से सर्वथा भिन्न जान लिया। क्रोधादि या धर्मास्ति आदि अचेतन को जानते हुए 'मैं क्रोधादि नहीं हूँ, चैतन्यरस में जो स्वाद आ रहा है, वही मैं हूँ' इसप्रकार धर्मी निरंतर अपने को चैतन्यस्वादरूप अनुभव करता है।

यहाँ तो चैतन्यरस के स्वाद के आधार पर धर्मी-अधर्मी का माप है। जो विकल्पों से भिन्न अपने चैतन्यस्वाद का अनुभव करता है, वह जीव धर्मी है और जो शुभराग-व्रतादि करते हुए भी उनसे भिन्न चैतन्यरस के स्वाद का अनुभव नहीं करता वह जीव अधर्मी है। अरे भाई! तेरे चैतन्यरस का स्वाद कितना मधुर है, उसकी तुझे खबर नहीं है और क्रोधादि के विकारी रस में ही तू अपने को अनुभव करता है—यह तुझे मोह का भूत लगा हुआ है।

जिसे कषायरस से अत्यंत भिन्न मधुर चैतन्यरस की खबर नहीं है, वह अनेक विकल्पों के स्वाद का आत्मारूप अनुभव करता हुआ उनका कर्ता होता है। जिसने चैतन्य के मधुररस को चखा, वह समस्त विकल्पों के रस को अपने से सर्वथा भिन्न जानता हुआ उन विकल्पों को रंचमात्र भी नहीं करता। चैतन्यरस में विकल्प नहीं है; इसलिये ज्ञानी विकल्प के समय ही अपने चैतन्यरस से भ्रष्ट नहीं होता, वह अपने में चैतन्यरस का अनुभव निरंतर करता है।

अज्ञानी अपने अमृत स्वभावरूप विज्ञानघन भगवान को भूलकर मृतकलेवर (जड़ और राग में) में मूर्छित हुआ है, जबकि ज्ञानी अत्यंत मधुर चैतन्यरस के स्वाद के समक्ष समस्त जगत के स्वाद को अपने से भिन्न जानता है।

अरे! जगत में जिसकी एक आँख कानी हो तो वह शर्म से उसे ढ़कता रहता है; अरे भाई! यहाँ शुभाशुभ विकल्प तो चैतन्य से भिन्न अंधे हैं, उस अंधे भावरूप में अपना अनुभव करने में तुझे शर्म क्यों नहीं आती? विकल्पों से लाभ मानकर उनके वेदन में तू स्थित हुआ, तब तू भेदज्ञानचक्षु को मींचकर अंधा हुआ। वह अंधापना कैसे दूर हो और तेरे भेदज्ञानचक्षु कैसे खुले? संत इसका तरीका समझाते हैं। चैतन्यस्वाद और राग के स्वाद को अत्यंत भिन्नता अनुभव करने से भेदज्ञानशक्ति प्रगट होती है। तब ज्ञानी धर्मात्मा ऐसा जानता है कि अहा! मैंने यह चैतन्यरस पहले कभी भी नहीं चखा था; अब मेरा आत्मा अपूर्व चैतन्यस्वाद का निरंतर अनुभव करता है। इस चैतन्यरस में अतीन्द्रिय आनंद भरा हुआ है, इस स्वाद के सन्मुख रागादि समस्त भाव बेस्वाद हैं, मेरे चैतन्यस्वाद में परभाव का कोई स्वाद नहीं है। विषयों के अशुभ स्वाद या भक्ति आदि के शुभराग के स्वाद की जाति से मेरे चैतन्यरस का स्वाद भिन्न जाति का है। इस चैतन्यरस के साथ कषायरस का एकत्व मानना अज्ञान का कारण है। ज्ञानी को अपने ज्ञानरस में किसी भी प्रकार के राग की एकता मालूम नहीं देती, राग से भिन्न ज्ञानरस की धारा उसके अंतर में निरंतर प्रवाहित होती है। अनंत अतीन्द्रिय आनंद का खजाना अंतर में भेदज्ञान

द्वारा खुल गया है। अब उस परिपूर्ण भरे हुए आनंद के खजाने में कोई सूक्ष्म विकल्प भी नहीं समा सकता। धर्मी यह अनुभव करता है कि 'मैं एक निरंतर सहज ज्ञान ही हूँ, कृत्रिम क्रोधादि कषायभावरूप नहीं हूँ।' 'मैं क्रोध-रागादि हूँ' ऐसी आत्मबुद्धि वह किंचित् नहीं करता।

भले ही शास्त्र के शब्दों की धारणा न हो, जैसे शिवभूति मुनि को 'मा रुष.. मा तुष' जैसे छोटे शब्द भी याद न रहते हों, फिर भी उसके अंतरंग में राग से भिन्न चैतन्यरस का अत्यंत स्पष्ट अनुभव होता था। उन्होंने चैतन्यरस के अनुभव की धुन में लीन होकर अंतर्मुहूर्त में केवलज्ञान प्राप्त किया। मा रुष... मा तुष भले ही याद न रहा किंतु उन्होंने अंदर के स्वसंवेदन द्वारा शांत चैतन्यरस और क्रोधादि कषायरस को अत्यंत भिन्न-भिन्न कर दिया।

अहा! कहाँ चैतन्य की शांति, और कहाँ क्रोधादि की आकुलता! ज्ञानी उन्हें एकरूप कैसे अनुभव करे? चैतन्य की शांति में कषाय का अग्निकण कैसे समाये? भेदज्ञान द्वारा ऐसा भिन्नत्व अनुभव में आवे, तब जीव ज्ञानी हुआ कहलाता है और वह ज्ञानी आनंदमय ज्ञान-चेतनारूप विज्ञानघन ही रहता हुआ रागादि सब परभावों का अत्यंत अकर्ता ही है। इसप्रकार अत्यंत मधुर चैतन्यरस के स्वाद से परिपूर्ण भेदज्ञान द्वारा ही रागादि के कर्तापने का नाश होता है—यह सिद्ध हुआ। अहो! आत्मा में जो परिपूर्ण चैतन्यस्वाद है, उसकी मिठास की क्या बात? हे जीव, भेदज्ञान द्वारा तू चैतन्यरस को एक बार तो चख! तुझे तेरा समस्त आत्मा परम अतीन्द्रिय आनंदरूप अनुभव में आयेगा।

कायाकल्प-मलिन देह को पूज्य बनाने की विधि

सप्तधातु से रचित और मलमूत्र से पूर्ण ऐसे अपवित्र देह को भी, हे भव्य! शुद्धचिद्रूप के चिंतवन द्वारा तुम दूसरों द्वारा पूज्य बनाओ।

मोही जीव 'कायाकल्प' द्वारा शरीर को ठीक रखना चाहते हैं, परंतु शरीर अपने अपवित्र स्वभाव को कभी नहीं छोड़ेगा, उसे पूज्य बनाने का उपाय एक ही है कि शुद्ध चिद्रूप का चिंतवन करना। शुद्ध चैतन्य का चिंतवन करनेवाले पुरुषों का शरीर भी अन्य व्यक्तियों द्वारा पूजा जाता है। (तत्त्वज्ञान तरंगिणी, 2-25)

शुद्धात्मा का पुजारी

धर्मी कहता है कि सुख के अमृत से पूर्ण शुद्ध आत्मतत्त्व को मैं सदा पूजता हूँ—किसके द्वारा पूजता हूँ ? कि चैतन्य के समरस द्वारा पूजता हूँ। पूज्य भी स्वयं और पूजक भी स्वयं; दोनों भिन्न नहीं हैं, अभेद हैं; उस अभेद की अनुभूति में अमृतरस-समरस-शांतरस उल्लसित होता है।

देखो, इसमें दो बातें आईं—

एक तो पूजने योग्य वास्तव में स्वयं का शुद्ध आत्मा है।

दूसरे, उस शुद्धात्मा की पूजा राग द्वारा नहीं होती, वीतरागी समभाव द्वारा ही उसकी पूजा होती है। पूजा अर्थात् उसकी श्रद्धा-ज्ञान तथा उसमें लीनता। ऐसी स्व-पूजा, वह परम अमृतरस के स्वाद का कारण है और मोक्ष का मार्ग है।

जिसकी पूजा करे, उससे विरुद्धभाव का आदर किसप्रकार हो ? वीतरागी चैतन्यतत्त्व को जो पूजता है, वह राग का आदर कैसे करे ? राग का आदर करना तो विषमभाव है, उसमें शुद्ध आत्मा व्याप्त नहीं होता और शांति प्राप्त नहीं होती। राग से भिन्न होकर चैतन्यभाव से शुद्ध आत्मा का आदर करते ही अंदर परम शांतरस झरता है।

राग पूज्य नहीं और राग द्वारा शुद्धात्मा का यथार्थ पूजन नहीं होता। अंतर में शुद्धात्मा स्वयं, स्वयं में तन्मयरूप से जितना रागरहित समभावरूप परिणमित हुआ, उतनी उसकी पूजा-स्तुति है, नमस्कार है। जिसको स्वयं नमन किया, उस जाति का भाव प्रगट करके नमन किया है, परंतु उससे विरुद्धभाव द्वारा उसको नमन (नमस्कार) नहीं होता।

हे जीव ! प्रथम निर्णय कर कि तुझे कौन मूल्यवान दिखता है ? क्या तुझे जड़-शरीर, लक्ष्मी मूल्यवान लगते हैं ? क्या तुझे पुण्य और राग मूल्यवान लगते हैं ? क्या बाह्यलक्षी ज्ञान अथवा शास्त्रपठन तुझे मूल्यवान दिखते हैं ? अथवा इन सबसे पार अपने शुद्ध चैतन्यतत्त्व की अनुभूति तुझे मूल्यवान लगती है ? अपने शुद्ध चैतन्यतत्त्व का अनुभव ही यथार्थ में मूल्यवान है; इस अनुभव के अतिरिक्त दूसरा सब निःसार है, उसका कोई भी मूल्य नहीं है। सर्व जगत

की अपेक्षा तुझे आत्मा अधिक भासित होना चाहिये। आत्मा अधिक भासित हो अर्थात् अन्य सर्व का रस उड़ जाये, बाह्य में मान-अपमान से चंचलता हो जाती हो, वह छूट जाये; और अंतर में चैतन्य के पाताल को तोड़कर आनंद की हिलोरें उछलें, ऐसी आनंद की मस्ती में धर्मी का आत्मा वर्तता है। अरे, इतने महान चैतन्य को चूककर बाहर की अनुकूलता-प्रतिकूलता में अथवा मान-अपमान में जो डिग जाता हो, वह आत्मा का साधन कैसे करे? आत्मा की गंभीरता जिसे भासित नहीं हुई है, आत्मा के वैभव की महिमा जिसने देखी नहीं है, उस आत्मा को परमभाव कहाँ से प्रगट हो? अहा! विशुद्ध चैतन्य-महातत्त्व की परम महिमा जानते ही जीव को मुक्ति के उत्तम सुख का स्वाद आता है और आत्मा भवदुःख से रहित हो जाता है।

'अहो! ऐसे परम तत्त्व की भावनारूप हम परिणमित हुए हैं। आनंद से परिपूर्ण अपने निजात्मतत्त्व को हमने जाना है। राग में निमग्न जीवों को ऐसा परमतत्त्व कहाँ से दिखाई पड़े? परमतत्त्व तो आनंद में निमग्न है। आनंद की अनुभूति द्वारा हम उसे देखते हैं, इसमें अब दुःख कैसा? निजात्मा के उत्तम सुख का हम सतत अनुभव करते हैं। और भव-जनित दुःख से तो हम दूर हो गये हैं।' (नियमसार कलश 66 के प्रवचन से)

'हम भक्त हैं'

जिसे निर्वाण की भक्ति है अर्थात् शुद्ध रत्नत्रय की आराधना है, वह जीव भक्त है... वह कहता है कि अहो! मेरे पूर्वज ऋषभादि तीर्थंकर भगवंतों ने भी ऐसी ही शुद्धात्मसन्मुख योगभक्ति द्वारा निर्वाण प्राप्त किया है, और मैं भी उसी मार्ग पर जाता हूँ! जो संसार के घोर दुःखों से भयभीत हों, वे ऐसी उत्तम भक्ति करो! धर्मी कहता है कि अहो! निर्मल सुखकारी ऐसे धर्म को मैंने गुरु के सान्निध्य में प्राप्त किया है। राग-द्वेष की परंपरा से हटकर शुद्ध आनंदमय तत्त्व में मेरी परिणत अब ढल गई है। अतीन्द्रिय आनंद के स्वाद में मेरा चित्त अब इतना लोलुप हो गया है कि इंद्रिय-विषयों से वह छूट गया है। मेरी परिणति में तो सुंदर आनंद झरता हुआ उत्तम तत्त्व प्रगट हुआ है; आत्मा की इस अति अपूर्व भावना से सुख प्रगट होता है, वह परम भक्ति है और वही निर्वाण का मार्ग है।

आत्म-लाभ का सुनहरा अवसर

सुवर्णपुरी के मंगल समाचार

सुवर्णपुरी में पूज्य गुरुदेव की मंगलछाया में मुमुक्षु जीवों को आत्मलाभ का सुनहरा अवसर मिला है। इस काल में संतों को ऐसी मंगलछाया प्रापत होना मुमुक्षु जीवों का महाभाग्य है। गुरुदेव के प्रताप से सोनगढ़ में रोज-रोज धर्मवृद्धि के मंगल प्रसंग बना करते हैं, उन प्रसंगों में से परमागम के साररूप अपने निजात्मा की अपूर्व भावना प्राप्त करके 'आत्मलाभ' मुमुक्षु का कर्तव्य है। अहो, गुरुदेव की मंगलछाया में धर्मवृद्धि के प्रसंग सुवर्णपुरी में नित्य ही बना करते हैं... उनके समाचार देते हुए हर्ष होता है। ऐसा आत्मलाभ देनेवाले गुरु मिले, वह प्रसंग धन्य है!

परम पूज्य गुरुदेव सुखशांति में विराजमान हैं। माघ शुक्ला पंचमी से प्रातः के प्रवचन में श्री नियमसार परमागम का वांचन पुनः (कुल दसवीं बार) पहली गाथा से प्रारंभ हुआ है। नियमसार की रचना आचार्य भगवान ने 'निजभावना' के अर्थ की है, परम गंभीर चैतन्य परमदेव की अंतर्मुख भावना का उसमें निरंतर अत्यंत गहरा घोलन किया है... और वीतरागरस को पुष्ट किया है। ऐसे इस परमागम द्वारा निजात्मभावना का पुनः पुनः घोन करते हुए गुरुदेव भी प्रसन्नचित्त से अधिकाधिक प्रफुल्लित होते हैं और अध्यात्मरस झरते प्रवचन सुनते हुए मुमुक्षु श्रोताजन भी निजात्मा की सम्यक्‌भावना प्राप्त करके आनंदित होते हैं।

प्रवचन का मंगल-प्रारंभ करते हुए गुरुदेव ने कहा कि वह नियमसार बहुत ऊँची वस्तु है; इसके द्वारा निज शुद्धात्मा की भावना निरंतर करनेयोग्य है। सर्वज्ञ परमात्मा का निर्दोष उपदेश जानकर, मैंने निजभावना के हेतु इस शास्त्र की रचना की है और श्रोताजनों के लिये भी इस शास्त्र द्वारा बारंबार निजभावना कर्तव्य है। ऐसी भावना के लिये यह नियमसार पुनः पुनः वाँचा जाता है।

प्रसन्नता से गुरुदेव कहते हैं कि—

आज (माघ शुक्ला पंचमी) दशलक्षणधर्म का पहला दिन है। वीतरागी दशलक्षण धर्म वर्ष में तीन बार (माघ, चैत्र और भाद्रपद मास में) आता है। उसमें माघ मास के दशलक्षण पर्व का आज प्रथम दिवस है... अतः मंगल दिवस है और आज हमारे यहाँ भी लाभ चौघड़िये में परमागम प्रवचनसार उत्कीर्ण होने का प्रारंभ होता है।

मंगल में लोग लिखते हैं कि 'लाभ सवाया'—हमें भी लाभ का ही प्रसंग है।

आत्मलाभ, वह मोक्ष है। आत्मा की पूर्ण शुद्ध दशा की प्राप्तिरूप मोक्ष 'आत्मलाभ' कहलाता है... यह पर्याय अपेक्षा लाभ है।

और द्रव्य तीनों काल पारिणामिकभाव से प्राप्त है, उसे 'द्रव्य-आत्मलाभ कहा जाता है।

आज लाभ चौघड़िये में संगमरमर पर परमागमों के उत्कीर्ण-कार्य में प्रवचनसार उत्कीर्ण करने का मंगल-प्रारंभ होता है। इसप्रकार धर्म के लाभ का यह प्रसंग है।

समयसार का उत्कीर्ण-कार्य आज समाप्त होता है और प्रवचनसार का उत्कीर्ण-कार्य प्रारंभ होता है; पंचास्तिकाय का उत्कीर्ण-कार्य पहले ही पूर्ण हो चुका है और निमयसार के प्रवचनों का आज पुनः मंगल प्रारंभ होता है। इसप्रकार परमागम की प्रभावना का अवसर है, अंतर्मुख होकर निजात्मा की भावना अर्थात् अनुभूति करना वह वीतरागी परमागमों का तात्पर्य है।

मंगल में जिनवाणीरूप ॐ की महिमापूर्वक गुरुदेव ने कहा कि अहा! समवसरण में तीर्थंकर भगवान के सर्वांग से जो ध्वनि खिरती होगी, वह कैसी होगी? उसकी क्या बात! इस वाणी में जो शुद्धात्मा कहा है, उसी की पुनः पुनः भावना आचार्यदेव ने इस नियमसार में की है।

मंगल में टीकाकार श्री पद्मप्रभ मुनिराज सर्वज्ञ परमात्मा को नमस्कार करते हुए कहते हैं कि हे जिन परमात्मा! आप हमारे अंतर में विराजते हो... तब जगत के अन्य मोही देवों को हम कैसे नमस्कार करें? ज्ञान-दर्शनसंपन्न स्व-संवेदनप्रत्यक्ष ऐसा मैं आत्मा-मोक्ष का साधक-उस वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा के अतिरिक्त अन्य संसारी मोहमुग्ध जीवों को कैसे नमस्कार करूँ?

अहो, हमारे ज्ञान में सर्वज्ञ परमात्मा निवास करते हैं, उसमें राग का कण भी नहीं प्रवेश कर सकता, वहाँ अन्य मोही-अज्ञानी जीवों को हम कैसे मानें? हमारे देव परम वीतराग सर्वज्ञ ही हैं कि जिन्होंने भवों को जीत लिया है—ऐसे परमात्मा को पहिचानकर उनको ही वंदन करता हूँ।

माघ शुक्ला पंचमी के प्रातः लगभग सवा बारह बजे पूज्य गुरुदेव के सुहस्त से मशीन द्वारा प्रवचनसार उत्कीर्ण करने का मंगल प्रारंभ हुआ। उसमें प्रथम ॐ तथा टीका का पहला मंगल श्लोक (सर्वव्याप्येक) गुरुदेव के सुहस्त से उत्साह भरे वातावरण में उत्कीर्ण हुआ था।

श्री पंडित दीपचंदजी साधर्मीकृत

ज्ञान-दर्पण

[अंक 331 से आगे]

जग में अनादि ही की गुपत भई है महा, लुपतसी दीसैं तौऊ रहे अविनासी है।
ऐसी ज्ञानधारा वह आपहि कौं आप जाने, गिहै भ्रमभाव पद पावै सुखरासी है॥
अचल अनूप तिहूं लोक भूप दरसावै, महिमा अनंत भगवंत देव वासी है।
कहै 'दीपचंद' सो ही जयवंत जगत मैं, गुण कौ निधान निज ज्योति कौ प्रकासी है॥57॥

मेरे निज स्वारथ कौं मैं ही उर जानत हौं, कहिये कौ नाहिं ज्ञानगम्य रस जाकौ है।
स्वसंवेद भाव मैं अभाव है सरूपही कौ, अनाकुल अतेंद्री अखंड सुख ताकौ है॥
ताकी प्रभुता मैं प्रतिभासित अनंत तेज, जगम अपार समैसार पद वाकौ है।
शुद्धदिष्टि दीएं अवलोकन है आपहिकौ, अविनासी देव देखी देखै पद काकौ है॥58॥

आतम दरब जाकौ कारण सदैव महा, ऐसो निज चेतन में भाव अविकारी है।
ताहिकी धरणहारी 'जीवन सकति' ऐसी, तासौ जीव जीवैं तिहूलोक गुणधारी है॥
द्रव्य गुण परजाय एतौ जीव दसा सब, इनहि मैं वस्तु जीव जीवनता सारी है।
सबकौ आधार सार महिमा अपार जाकौ, जीवन सकति 'दीप' जीव सुखकारी है॥59॥

दरसन-गुण जामै दरसी सकति महा, ज्ञायक सकति ज्ञानमांही सुखदानी है।
अतुल प्रताप लिए 'प्रभुत्व सकति' सो है, सकति अमूरति सो अरूपी बखानी है॥
इत्यादि सकती जे हैं जीव की अनंतरूप, तिन्हैं दिढ राखिवेकौ अति अधिकानी है।
'बीरज सकति' दीप भाएं निज भावन मैं, पावन परम जात कोई सिवथानी है॥60॥

तिहुंकाल विमल अमूरति अखंडित है, आकरति जाकी परजाय कही व्यंजनी।
अचल अबाधित अनूप सदा सासती है, परदेस असंख्यात धरे अभंजनी॥
विकलप भावकौ लखाव कोउ दीसै नाहिं, जाकी भवि जीवन के रुचि भव-भंजनी।
महा निरलेप निराकार है सरूप जाकौ, 'दरसि सकति' ऐसी परम निरंजनी॥61॥

सकति अनंत जामैं चेतना प्रधानरूप, ताहू में प्रधान महा ज्ञायक सकति है।
परम अंखड बृहमंड की लखैया सो है, सूक्ष्म सुभाव यौं सहज ही की गति है॥
स्व-पर प्रकासनी सुभासनी सरूप की है, सुख की विलासनी अपाररूप अति है।
उपयोग साकार बन्यौ है सरूप जाकौ, 'ज्ञान की सकति' दीप जानै सांची मति है॥62॥

सुखवेद भाव के लखाव करि लखी जाहै, सबही का पाहै कहाँ लौं कहीजिये।
अचल अनूप माया सास्वती अबाधित है, अतिंद्री अनाकुल मैं सुरस लहीजिये॥
अविनास-रूप है सरूप जाकौ सदाकाल, आनंद अखंड महा सुधापान कीजिये।
ऐसी 'सुख सकति' अनंत भगवंत कही, ताही मैं सुभाव लखि दीप चिर जीजिये॥63॥

सत्ता के आधार ए विराजत हैं सर्व गुण, सत्तामाहिं चेतना है चेतना मैं सत्ता है।
दरसन ज्ञान दोऊ एऊ भेद चेतना के, चेतना सरूप मैं अरूप गुण पत्ता है॥
चेतना अनंत गुणरूप तैं अनंतधा है, द्रव्य परजाय सोऊ चेतन का नत्ता है।
जड़ के अभाव मैं सुभाव सुध चेतनाकौ, यातैं चिद सकतिमैं ज्ञानवान हत्ता है॥64॥

सुच्छम सुभावकौ प्रभाव सदा ऐसौ जिहिं, सबै गुण सूच्छम सुभाव करि लीने हैं।
धीरज सुभावकौ प्रभाव भयौ ऐसौ तिहि, अपने अनंत बल सबहीनौ दीने हैं॥
परम प्रताप सब गुणमैं अनंत ऐसै, जानै अनुभवी जे अखंड रस भीने हैं॥
अचल अनूप दीप 'सकति प्रभुत्व' ऐसी, उर मैं लखावै ते सुभाव सुध कीने हैं॥65॥

अगुरुलघुत्व की विभूति है महत महा, सब गुण व्यापिकै सुभाव एक रूप हैं।
ऐसे गुण गुणनि मैं विभूति बखानियतु, जानियतु एकरूप अचल अनूप हैं॥
निजनिज लक्षण की सकति है न्यारी न्यारी, जिहीं विसतारी जामै भाव चिदरूप है।
कहै 'दीपचंद' सुख कहूँ मैं सकति ऐसी, विभूति लखेतैं जीव जगत को भूप हैं॥66॥

सकल पदारथ की अवलोकनि सामान्य, करै है सहज सुधा धार की चरसनी।
जामै भेद भावकौ लखाव कोउ दीसै नाहिं, देखै चिदजोति शिवपद की परसनी॥
सकति अनंती जेती जाही मैं दिखाई देत, महिमा अनंत महा भासती सुरसनी।
कहै 'दीपचंद' सुख कंद मैं प्रधान-रूप, सकति बनी है ऐसी सरब दरसनी॥67॥

परमागम के रहस्य का प्रसाद

श्री समयसार–परमागम और श्री नियमसार–परमागम इन दोनों पर प्रवचनों द्वारा पूज्य गुरुदेव चैतन्य के शांत अध्यात्मरस की वर्षा कर रहे हैं। समयसार में आस्रव अधिकार द्वारा, ज्ञानी को ज्ञानमय भाव के द्वारा कैसा निरास्रवपना है—यह बताया है; और नियमसार में शुद्धभाव अधिकार द्वारा ज्ञानी के अंतर में उपादेयरूप शुद्ध परम चैतन्यतत्त्व कैसा है—यह बतलाया है। उसमें से आनंदमय शुद्धतत्त्व को अनुभवगम्य करानेवाला थोड़ा–सा प्रसाद यहाँ दिया जा रहा है।

सम्यग्दृष्टि को अपने कारण–कार्य दोनों शुद्ध हैं और वह सम्यग्दृष्टि जानता है कि अन्य जीवों में कारणतत्त्व सदा शुद्ध है। परिणति की अशुद्धता द्रव्य–गुण में प्रवेश नहीं कर गई है अर्थात् द्रव्य–गुण अशुद्ध नहीं हुए हैं।

पर्याय की अशुद्धता को ही देखनेवाले अज्ञानी को उस पर्याय के पीछे रहनेवाला शुद्धतत्त्व दिखाई नहीं देता। ज्ञानी ने जब शुद्धकारणतत्त्व को जाना, तब पर्याय भी उसके आश्रय से शुद्ध होकर परिणमित हुई है, इसलिये ज्ञानी को तो कारण–कार्य दोनों शुद्ध हैं। पश्चात् जो अल्प रागादि अशुद्धता हो, वह शुद्धता से बाह्य है–भिन्न है; वह यथार्थ में ज्ञानी का कार्य नहीं है।

अहो, ऐसे कारण–कार्य को सम्यग्दृष्टि जीव परमागम के अनुपम रहस्य द्वारा जानते हैं। अहो, एकत्वस्वरूप शुद्ध आत्मा सब जीवों में शोभायमान है। ऐसे शुद्धतत्त्व को देखनेवाली दृष्टि वह द्रव्यदृष्टि है; और ऐसी द्रव्यदृष्टिवाला जीव सम्यग्दृष्टि है।

सम्यग्दृष्टि अपने शुद्ध तत्त्व को जानता है; पर्याय शुद्ध हुई है, उसको भी जानता है और कुछ अशुद्धता शेष रही है, उसे भी जानता है।

धर्मी ने चैतन्य की वीतरागी शांति का वेदन किया है; उस चैतन्य की शांति के समीप शुभराग का कषायकण भी उसे अग्निसदृश लगता है। चैतन्य को शांति में से बाहर निकलते ही

राग की अशांति उत्पन्न होती है। परंतु चैतन्य की शांति जिसने नहीं देखी है, उसे शुभराग अग्निसदृश नहीं लगता है। अहा! चैतन्य की शांति का जिसने आस्वादन किया, वह तो राग से पृथक् हो गया, चाहे राग शुभ हो अथवा अशुभ, वह सर्व राग अशांति है—घोर संसार का मूल है। अरे, राग में चैतन्य की शांति कैसे हो?

अहा, परमागम के रहस्य का मंथन करके वीतरागी संतों ने चैतन्य की शांतिरूप मक्खन निकाला है। भाई! परमागम का मंथन करके उसमें से तू शुभाशुभराग न निकाल; शुभराग परमागम का सार नहीं है। परमागम का सार, परमागम का मक्खन, परमागम का रहस्य तो अंतर में शांति का सागर आत्मा है, उसे अनुभव में ले। अहो, अकषाय शांति का सागर आत्मा है, उस अमृत के समुद्र में से राग के विष का कण उत्पन्न नहीं होता।

चैतन्य के स्वभाव में से सिद्धपद और केवलज्ञान की शुद्धता प्रगट हो, तब भी शक्ति में शुद्धता ऐसी की ऐसी परिपूर्ण है, शक्ति कहीं कम नहीं होती। उसीप्रकार पर्याय में शुद्धता कम हो, तब द्रव्य में शक्तिरूप अधिक हो—ऐसा भी नहीं है। उसीप्रकार अज्ञानदशा के समय भी शुद्धस्वभाव शक्तिरूप ऐसा का ऐसा ही था—परंतु उससमय स्वयं को उसकी प्रतीति नहीं थी, प्रतीति होते ही ज्ञात हुआ कि अहा, जैसा शुद्धतत्त्व इससमय अनुभव में—श्रद्धा में आया, ऐसा ही शुद्धतत्त्व पहले भी मुझमें था ही; अब उसका भान होने पर पर्याय भी शुद्ध हुई। अहो, जिसने ऐसा शुद्धतत्त्व प्रतीति में लिया—अनुभव में लिया, उस सम्यग्दृष्टि को धन्य है... मुनि भी उसकी प्रशंसा और अनुमोदना करते हैं। ऐसे तत्त्व को अनुभव करनेवाले मुनिवर वंदनीय हैं, और सम्यग्दृष्टि भी प्रशंसनीय हैं।

अहा, ऐसा शुद्ध चैतन्यतत्त्व संतों ने तुझे सुनाया, तो अब आज ही तू ऐसे चैतन्यतत्त्व को अनुभव में लेना। आज से ही प्रारंभ कर देना। आत्मा के लाभ का यह अवसर है। भाई, तू उलझन में न पड़ना... अज्ञान में चाहे जितना काल बीत गया परंतु तेरा स्वभाव मलिन नहीं हुआ, वह तो ऐसा का ऐसा शुद्ध है; उसकी प्रतीति करने पर अज्ञान दूर हुआ और परम शांति प्रगट हुई; तब धर्मी अपने कारण-कार्य दोनों को शुद्ध जानता है।

अशुद्धता तो ऊपर-ऊपर की है। ऊपर-ऊपर अर्थात् क्या? कहीं असंख्य प्रदेश में से ऊपर के थोड़े से प्रदेशों में है और अंदर के प्रदेशों में नहीं है-ऐसा नहीं है। पर्याय तो सर्व प्रदेशों में है परंतु वह अशुद्ध पर्याय अंदर गहरे अर्थात् द्रव्य-गुण में प्रवेश नहीं करती है, द्रव्य-गुण

अशुद्ध नहीं हुए हैं, अतः अशुद्धता को ऊपर-ऊपर की कही है। उस अशुद्धता के समय अंतर्दृष्टि से धर्मात्मा अपने शुद्ध द्रव्य-गुण-स्वभाव को जानता है, उसीप्रकार पर्याय में जितनी शुद्धता वर्तती है, उसको भी जानता है और अशुद्धता विद्यमान है, उसको भी (स्वभाव से भिन्नरूप से) जानता है। सबको जानते हुए भी परमागम के साररूप शुद्धतत्त्व को ही वह अंतर में उपादेयरूप से अनुभव करता है। अहो, शुद्धतत्त्व के रसिक जीवों! ऐसे परमतत्त्व को जानकर आज ही उसे अनुभव करो! [समयसार, गाथा 168]

सम्यग्दर्शन हुआ, तब पूर्णानंदस्वरूप आत्मा धर्मी के अनुभव में आया और राग के साथ का संसर्ग उसे छूट गया... उसकी ज्ञानपर्याय में रागादि का कर्तृत्व नहीं रहा, उसमें एकताबुद्धि नहीं रहीं, इसलिये रागादि से पृथक् ज्ञानमयभाव उसे प्रगट हुआ; उस ज्ञानमयभाव में राग का मिश्रपना नहीं है, ज्ञानमयभाव राग से पृथक् ही है, रागरहित ही है। और ज्ञानी का ऐसा ज्ञानमयभाव बंध का किंचित् भी कारण नहीं है; वह तो स्वयं को राग से भिन्न स्वभावरूप से ही प्रकाशित करता है।

अहो, पूर्व आनंदधाम आत्मा जब ध्येय बना, तब धर्मात्मा को ज्ञानमय दशा हुई और राग उससे पृथक् हो गया, वह पुनः ज्ञान के साथ कभी एकमेक नहीं होता। जैसे वृक्ष में से खिरा हुआ फल वृक्ष के साथ नहीं चिपकता है, उसीप्रकार चैतन्यदृष्टि से पूर्णानंदस्वभाव को प्रतीति में लिया, तब धर्मात्मा के ज्ञानभाव से रागादिभाव पृथक् हो गया—फल की भाँति खिर गया; अब फिर कभी वह रागादिभाव ज्ञान के साथ एक नहीं होता, धर्मात्मा का ज्ञान, राग में कभी तन्मय नहीं होता। सर्वज्ञ भगवान ने जैसा आत्मा देखा है, वैसा ही धर्मात्मा जीव अपने 'स्वसंवेदन-प्रत्यक्ष' अनुभवपूर्वक देखता है। अहा, अतीन्द्रिय आनंद के वेदन में राग कैसा? जिसप्रकार केवलज्ञान में राग नहीं है, उसीप्रकार साधक के ज्ञान में भी राग नहीं है; राग होने पर भी उसका ज्ञान राग से अत्यंत पृथक् ही वर्तता है। उस राग से भिन्न निज परम चैतन्यस्वभाव का अतीन्द्रिय आनंदसहित अनुभव करता है, उसमें रागादि दुःखमय भाव प्रवेश नहीं करता परंतु खिर जाता है।

अरे, धर्मात्मा के चैतन्यभाव में राग का क्लेश कैसा? अतीन्द्रिय चैतन्य की शांति में राग की अशांति कैसी? शुभराग उसका साधन भी नहीं हो सकता। अरे भाई! राग तो दुःख है, वह तेरी शांति का साधन किसप्रकार हो? तेरी शांति का यथार्थ साधन तो, तुझमें अनंत शांति

का समुद्र भरा है—वही है। ऐसी शांति के वेदनपूर्वक धर्मात्मा के अप्रतिहतभाव से ज्ञान और राग भिन्न हुए हैं, वह अब फिर कभी एक नहीं होंगे; राग का कोई अंश धर्मात्मा को अपने चैतन्यभावरूप से भासित नहीं होता। चैतन्यभावरूप अपने को राग से अत्यंत पृथक् ही अनुभव करता है—ऐसी सम्यग्दृष्टि की दशा है। भले ही अभी क्षायोपशमिकभावरूप से सम्यक्त्व हो परंतु धर्मात्मा को उसमें ऐसा जोर है (बल है) कि उसे अप्रतिहतरूप से क्षायिकभाव के साथ जोड़ दे—ऐसी नि:शंकता के बल से आचार्यदेव कहते हैं कि हमारा ज्ञान राग से भिन्न हुआ है, वह अब कभी राग के साथ एकमेक नहीं होगा।

सराग भूमिका में भी धर्मात्मा का सम्यक्त्वभाव तो राग से भिन्न ही है। सम्यक्त्वादि ज्ञानमय भाव हैं, वे सब वीतराग ही हैं; और रागादिभाव तो चेतन से विलक्षण होने से अज्ञानमय हैं, वह कहीं चैतन्य स्वभाव नहीं हैं। धर्मात्मा का चैतन्यभाव अचेतन रागादिभावों से ऐसा पृथक् हुआ कि उसमें अंशमात्र मिश्रित नहीं होता; ज्ञान का कोई अंश राग में नहीं मिलता और राग का कोई अंश ज्ञान में नहीं मिलता। जिसप्रकार चेतन-अचेतन को कभी एकत्व नहीं होता, उसीप्रकार ज्ञान और राग को कभी भी एकत्व नहीं है। जब ज्ञान राग से अत्यंत पृथक् हुआ, तब सम्यक्त्व हुआ। सब विकल्पों से भिन्न निर्विकल्प चैतन्य की अनुभूति किये बिना सम्यक्त्व नहीं होता। चैतन्य की निर्विकल्प शांति में राग का कोई विकल्प प्रवेश नहीं कर सकता।

परमागम का सार यह है कि अंतर में परभावों से भिन्न निज शुद्ध चैतन्यवस्तु को ज्ञान में-श्रद्धा में-अनुभव में लेना। चैतन्य-चमत्कार, वह परमतत्त्व है; व्यवहार के विकल्प कहीं परमतत्त्व नहीं हैं; परमतत्त्व के अनुभव में-ज्ञान में-श्रद्धा में उन विकल्पों का अभाव है। सम्यग्दृष्टि ऐसे अद्‌भुत तत्त्व को अंतर में देखते हैं... उसमें कोई भेदविकल्प-राग अथवा पर का संबंध नहीं दिखायी देता... द्रव्य में-गुण में-पर्याय में शुद्धता का अनुभव होता है; जो अशुद्धता है, वह शुद्धतत्त्व के अनुभव से बाह्य है। ऐसे तत्त्व को शुद्ध तत्त्वरसिक जीव अनुभव करते हैं। इस तत्त्व में एकमात्र शांति ही है... एकमात्र शांति का सागर आत्मा, उसमें विकल्पों की अशांति कैसे हो? अरे जीव! ऐसे शांत शुद्ध तत्त्व का रसिक होकर उसे अनुभव में ले। तत्त्वरसिक जीवों का यह एक ही निरंतर कर्तव्य है।

शुद्ध चैतन्यमय एक भाव ही मैं हूँ, उससे भिन्न रागादि सर्वभाव वह मैं नहीं हूँ। उज्ज्वल ज्ञान द्वारा धर्मी जीव ऐसे तत्त्व का अनुभव करते हैं; वही सर्व सिद्धांत का सार है।

मेरे चैतन्य की अनुभूति से भिन्न जो भाव हैं, वे सब परस्वभाव हैं, वह मैं नहीं हूँ... अहो मोक्षार्थी जीवो! चैतन्य के इस परमस्वभाव का उदारचित्त से सेवन करो। चैतन्य से भिन्न जो कोई परभाव है, वह आत्मा नहीं है; सहज चैतन्यभावरूप से जो स्वयं में अनुभव किया जाता है, वह परमतत्त्व ही आत्मा है-वही मैं हूँ-ऐसा धर्मी अनुभव करता है—ऐसा अनुभव, वह सर्व सिद्धांत का सार है।

चैतन्य की वीतरागी शांति का जिसने वेदन किया है, उसे शुभराग में भी अशांति और क्लेश लगता है। धर्मात्मा जीव को सविकल्पदशा हो अथवा निर्विकल्पदशा हो—उस समय जो ज्ञानपरिणति है, वह तो राग से भिन्न ही है, वह कहीं बंध का कारण नहीं है; उस समय जो राग है, वही बंध का कारण हैं अर्थात् ज्ञान बंध का कारण न होने से ज्ञानी को बंधन नहीं—ऐसा कहा है। ज्ञानभाव बंध का कारण नहीं और रागभाव बंध का कारण है, इसप्रकार दोनों में अत्यंत भिन्नता है। ज्ञानभाव का कर्ता ज्ञानी रागभाव का कर्ता नहीं होता। ज्ञानभाव बंध का कारण नहीं है, परंतु मोक्ष का ही कारण होता है; और रागभाव मोक्ष का कारण नहीं, परंतु बंध का ही कारण होता है—इसप्रकार दोनों की जाति भिन्न है और राग का अस्तित्व तो ज्ञान की अल्प दशा के समय ही होता है, इसलिये जघन्य ज्ञानदशा के समय जो बंधन होता है, उसमें ज्ञान का कोई दोष नहीं है। जघन्य ज्ञानपरिणमन को बंध का कारण कहा है, वहाँ ऐसा समझना कि यथार्थ में ज्ञानपरिणाम बंध का कारण नहीं है परंतु उस ज्ञान के समय वर्तता हुआ राग ही बंध का कारण है। साधक को ज्ञान और राग दोनों को एकसाथ रहने में विरोध नहीं है, परंतु उसमें जो राग है, वही बंध का कारण है और जो ज्ञान है, वह बंध का कारण नहीं होता—ऐसी दोनों की भिन्नता पहचाननी चाहिये। उसमें से ज्ञानभाव को ही ज्ञानी का कार्य कहा है और इस कारण उसे अबंध कहा है। राग को तो ज्ञान से भिन्न बंधभाव में रखा है, वह ज्ञानी का कार्य नहीं है।

ऐसे भेदज्ञान द्वारा ज्ञानीजन निज आत्मा को अनंत चैतन्यभाव सहित अनुभव करते हैं। उन्होंने राग से भिन्नता को तो जान लिया है और अभी जो एकत्वबुद्धि रहित, अबुद्धिपूर्वक रागादि शेष हैं, उन्हें भी छोड़ने के लिये बारंबार उपयोग को अंतर में एकाग्र करके स्वशक्ति को अनुभव करते हैं। निचलीदशा में निर्विकल्पदशा कभी-कभी आती है और पश्चात् मुनि को तो बारंबार निर्विकल्पदशा होती रहती है... राग से अत्यंत भिन्न चैतन्य पिण्ड महा आनंद सहित

अनुभव करते हैं। अहो, ऐसा अनुभव, वह वीतराग मार्ग है, वीतराग का मार्ग तो अलौकिक मार्ग है, जगत से भिन्न जाति का है।

ज्ञानी का ज्ञान भले जघन्य हो—छोटे में छोटा अंश हो—तो भी उस ज्ञान में राग का मिश्रण नहीं है, राग से अत्यंत पृथक् स्व-संवेदनरहित जो ज्ञान है, वह ज्ञान मोक्षमार्ग का साधन करता है; वह कहीं बंध का कारण नहीं होता। अहो, वह ज्ञान तो वीतरागी शांति का वेदन करानेवाला है। अहो, चैतन्य का महा आनंद और वीतरागी शांति... इनकी क्या बात? उस शांति में से हटने पर राग की उत्पत्ति हुई-वह तो अशांति और क्लेश है; शांतिरूपी बर्फ के समीप तो वह अग्नि की भट्टी समान है।

अहो, चैतन्यतत्त्व के परमभाव की क्या बात? वही धर्मात्मा के अंतर में उपादेय है। आत्मा के परमस्वभाव में सहज सुख-ज्ञानादि अनंत भाव हैं—वे स्व-तत्त्वरूप से उपादेय हैं।

अहो! उपादेयतत्त्व की यह मीठी-मधुर, चैतन्यरसमय बात है। आत्मा सदैव त्रिकाल सहज आनंदस्वरूप है। सहजज्ञान-सहजदर्शन-सहजचारित्र और सहजसुख, ऐसे परमभाव -स्वरूप स्व-द्रव्य है; उसका आधार एकरूप परमपारिणामिकभाव है, वही कारणसमयसार है, उसे उपादेयरूप से अनुभव में लेने पर शुद्धदशारूप कार्यसमयसार प्रगट होता है।

एकरूप सहज अंतरतत्त्व, उसमें ज्ञानादि अनंत सहज स्वभाव विद्यमान हैं, सम्यग्दर्शनादि निर्मल पर्यायें, वे कार्य हैं और उनका 'कारण' आत्मा में त्रिकाल है। अंतर्मुख होकर उस त्रिकाली स्वभाव को उपादेय करने पर पर्याय स्वयं सम्यग्दर्शनादि निर्मल कार्यरूप हो गई है। उस पर्याय ने अंतर में शुद्ध कारणपरमात्मा को उपादेय किया—ऐसा कहा जाता है।

वर्तमान पर्याय में चिदानंदस्वभाव का परम माहात्म्य होने पर पर्याय उसमें ढल गई और उस आनंद के अपूर्व वेदनसहित जो अनुभूति हुई, वही सम्यग्दर्शन है, उसके साथ अनंतगुणों की निर्मलता का स्वाद है। विभाव गुण-पर्यायों से पार जो एकरूप सहज सुख-ज्ञानादि अनंत स्वभावों से पूर्ण परमस्वभाव-कारणपरमात्मा है, वह धर्मात्मा की दृष्टि में ध्येयरूप से समा जाता है। अंतर में महान चैतन्यभंडार है; जिसमें से सम्यग्दर्शन-केवलज्ञानादि निधान प्रगट होते हैं।

ज्ञान को उदार और उज्ज्वल करके अर्थात् राग से अत्यंत भिन्न करके मोक्षार्थी जीव

आनंदमय शुद्ध चैतन्यज्योति का ही सदैव सेवन करो। शुद्ध चैतन्यभावरूप से अपने अनुभव में आता हुआ, तत्त्व वही मैं हूँ; और चैतन्य से भिन्न अन्य लक्षणवाले जो कोई रागादि अन्यभाव नये-नये प्रगट होते हैं—वह मैं नहीं हूँ, वह भाव मेरी चैतन्यशांति से भिन्न ही जाति के हैं।

राग के वेदन में मैं नहीं हूँ, मति-श्रुतज्ञान में स्वसंवेदनप्रत्यक्ष हुआ, वह मैं हूँ। मेरे ज्ञान के स्वसंवेदन से बाहर जो कोई रागादिभाव हैं, वे मैं नहीं हूँ, वे मुझसे परद्रव्य हैं। इसप्रकार भेदज्ञान द्वारा धर्मात्मा जीव शुद्ध आत्मा को स्वसंवेदन में लेते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प मेरे द्रव्य-गुण-पर्याय में नहीं हैं। स्व-संवेदन में जो शुद्ध अनुभूति पर्याय हुई, उसमें राग का अनुभव नहीं है, अत: ज्ञानी की शुद्धपर्याय प्रगट हुई, उसमें रागादि नहीं हैं। रागदशा जितनी है, उसे धर्मात्मा जानता है, परंतु चैतन्यपरिणति से भिन्न जानता है। शांति के वेदन के साथ रागादि की अशांति के वेदन को वह नहीं मिलाता परंतु उसे परद्रव्य के समान भिन्न जानता है। जगत जगत में रहा, मुझमें जगत नहीं है।

अरे, इस चौरासी के अवतार करते हुए जीव ने अज्ञानवश विकार के पक्ष का ही सेवन किया है। वह पक्ष छोड़कर ज्ञान के पक्ष में आने की यह बात है। राग से भिन्न शुद्धात्मा का सेवन करने पर ज्ञान में अपूर्व स्वसंवेदनसहित शांति प्रगट होती है। उस शांति के वेदन के समक्ष रागादिभावों को धर्मात्मा अपने से भिन्न, अग्नि की भट्टी सदृश जानता है।

हमारा शुद्ध जीवास्तिकाय असंख्य प्रदेशों में महाआनंद से पूर्ण है। असंख्य प्रदेशों में अनंत शांति से पूर्ण हमारा चैतन्यतत्त्व है, उससे अन्य पुद्गल संबंधी जो कोई भाव हैं, वे यथार्थ में हमारे नहीं हैं। रागादिभाव पुद्गलद्रव्य के साथ संबंध रखते हैं, वे हमारे चैतन्यभाव के साथ संबंध नहीं रखते, इसप्रकार तत्त्ववेदी जीव स्पष्टरूप से निज शुद्धतत्त्व का अनुभव करता है, और वह अपूर्व आनंदसहित सिद्धि को प्राप्त करता है।

अहो, वीतरागी संतों ने चैतन्य का हृदय तैयार करके दिया है अर्थात् चैतन्य के आनंद का रहस्य खोलकर बतलाया है; अब उसे लक्षगत करके अंतर में पचाना-अनुभव में लेना, वह स्वयं के हाथ में है। ज्ञान के उपयोग को अंतर्मुख करके ऐसे शुद्ध जीवास्तिकाय को अनुभव में लेने पर अति अपूर्व ऐसे सिद्धपद के आनंद का महा स्वाद आता है... उस महा आनंद का स्वाद लेते-लेते मुमुक्षु जीव अल्पकाल में ही अति-अपूर्व सिद्धि को प्राप्त करते हैं।

सम्यक्त्व का अंतरंग हेतु—सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेवाले जीव को निमित्त कैसा होता है और उस निमित्त में भी अंतरंग निमित्त कैसा होता है—उसका सुंदर वर्णन नियमसार गाथा 53 में किया है। सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिये जीव को अन्य सम्यग्दृष्टि जीव की अंतरंग चेतना, वह अंतरंग निमित्त है और शुद्ध आत्मा को दिखानेवाली उनकी वाणी, वह बहिरंग निमित्त है। धर्मात्मा की वाणी राग और चैतन्य की भिन्नता दिखानेवाली है; और उसी समय धर्मात्मा की चेतना स्वयं राग से भिन्न परिणमित हो रही है; उसमें वाणी बहिरंग निमित्त है और चेतना अंतरंग निमित्त है। धर्मात्मा की चेतना को पहचाननेवाले जीव को स्वयं में चेतना और राग का भेदज्ञान होता है। अरे! धर्म प्राप्त करनेवाले को निमित्त कैसा होता है, उसकी भी सच्ची पहचान जीव को नहीं है। अरिहंतदेव के द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों चेतनमय हैं, उनको पहचाननेवाला जीव स्वयं चैतन्य को पहचान लेता है और उसे सम्यग्दर्शन होता है—ऐसा कहा है; उसीप्रकार यहाँ अंतरंग निमित्तरूप से सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा की ज्ञानचेतना को पहचानने की बात कही है। धर्मात्मा को बाहर से पहचाने परंतु अंतर में उसकी ज्ञानचेतना को न पहचाने तो वह सम्यक्त्व का कारण नहीं होता। अतः धर्मात्मा-सम्यग्दृष्टि जीव वह स्वयं अंतरंग हेतु है, ऐसा कहा है। सम्यग्दृष्टि आत्मा का जो कुछ भी स्वरूप कहता है, वह वीतराग की वाणी ही है, जो आत्म-अनुभव किया, उसे ही वह कहता है। अहो, अंतर में जिसे अपना अनुभव करना हो, उसके लिये यह बात है। यह शास्त्र की चतुराई से मिले ऐसा वस्तु नहीं है। यह तो अंतर के अनुभव की वस्तु है। यह बात समझने में सम्यग्दृष्टि जीव ही निमित्तरूप होता है; और उस सम्यग्दृष्टि को स्वयं पहिचाने, तभी उसकी वाणी सम्यक्त्व का निमित्त होती है। एकमात्र वाणी निमित्त नहीं है परंतु उसका आत्मा मुख्य निमित्त है, अतः उसे अंतरंग हेतु कहा है, और उपादानरूप से अपने अंतर में परम शुद्ध तत्त्व विराजित है, उसका अवलंबन लेने पर निश्चयसम्यक्त्व होता है; वह मोक्ष का हेतु है।

मोक्ष का कारण

मोक्ष के लिये हे जीव! तुझे शुद्ध रत्नत्रय करनेयोग्य है; उन रत्नत्रय के कारणरूप ऐसे कारणपरमात्मा को तू शीघ्र भज!—वह तू ही है; कहीं बाह्य में तेरा कारण नहीं है; अंतर में तेरा जो परमस्वरूप है, उसी को तू कारणरूप से भज!

विविध तत्त्वचर्चा

प्रश्न— आत्मा का श्रवण और चिंतन करते हुए किसी समय ऐसा भाव उल्लसित होता है कि अभी ही अंतर में उतरकर उसका अनुभव कर लें—परंतु पश्चात् यह भाव शिथिल हो जाता है और वैसा पुरुषार्थ उत्पन्न नहीं होता, इसका कारण क्या ?

उत्तर—इसमें आत्मा का सामान्य-प्रेम है, परंतु यथार्थ में तीव्र आकांक्षा (उत्साह) की अल्पता है; यदि यथार्थ में... तीव्र... आत्मस्पर्शी लगन हो तो परिणाम अंतर में झुककर स्वकार्य साधे बिना नहीं रहे। अतः पुनःपुनः प्रयत्न चालू रखकर रुचि की तीव्रता बढ़ाना। चैतन्यवस्तु का स्वरूप लक्षगत करके उसकी सच्ची लगन लगते ही पुरुषार्थ अवश्य उभराता है; और आत्मा की परम महिमा से गहराई तक चैतन्यरस का आस्वादन करते-करते अंतर में परिणाम तन्मय होकर साक्षात् अनुभव कर लेता है। आत्मा की जैसी गंभीर महिमा है, वैसी बराबर लक्ष में आने पर अंचित्य रस से परिणाम स्वयं में एकाग्र हो जाता है—यही सच्चा पुरुषार्थ है।

प्रश्न— 'सर्वज्ञ हैं' ऐसा निर्णय किसप्रकार हो ?

उत्तर— आत्मा ज्ञानस्वभाव है; उसे जब रागादि अथवा ज्ञानावरणादि धर्म का कोई प्रतिबंध नहीं रहा, तब उसकी पूर्ण शक्ति प्रगट हुई, उसमें कोई विघ्न नहीं रहा अर्थात् सर्वज्ञता हुई। आत्मा के ज्ञानस्वभाव का निर्णय करने पर, 'सर्वज्ञ हैं' ऐसा अवश्य निर्णय होता है। ज्ञानस्वभाव की जिसे प्रतीति न हो, उसे सर्वज्ञ की यथार्थ प्रतीति नहीं होती। स्वानुभव सहित ज्ञानस्वभाव की प्रतीति सर्वज्ञ की सच्ची भक्ति और उपासना है—यह बात समयसार गाथा 31 में तथा प्रवचनसार गाथा 80 आदि में आचार्यदेव ने बहुत सुंदर रीति से समझायी है। राग से पृथक् होकर, 'मैं ज्ञानस्वभावी आत्मा हूँ' ऐसी पहिचान द्वारा सर्वज्ञ के अस्तित्व का निर्णय हो जाता है और सर्वज्ञ के अस्तित्व का निर्णय करनेवाला जीव स्वयं सर्वज्ञपद का साधक हो जाता है।

प्रश्न— पाँच भावों में से बंध का कारण कौन ?

उत्तर—एक उदयभाव और उसमें भी मोहरूप उदयभाव, वही बंध का कारण है; अन्य कोई

भाव बंध का कारण नहीं है।

प्रश्न— पाँच भावों में से मोक्ष का कारण कौन ?

उत्तर—उपशमभाव, क्षायिकभाव तथा सम्यक् क्षयोपशमभाव वे मोक्ष के कारण हैं। पारिणामिकभाव बंध का अथवा मोक्ष का साधक नहीं है; यह बंध-मोक्ष के हेतुत्व से रहित है।

प्रश्न— ऋद्धियाँ कितनी हैं ?

उत्तर—बुद्धिऋद्धि इत्यादि आठ महा ऋद्धियाँ हैं, उनके अंतर्भेद 64 हैं। उन 64 ऋद्धियों में सबसे प्रथम केवलज्ञान-बुद्धिरूप महाऋद्धि है। आत्मा निजवैभव की अपेक्षा से तो केवलज्ञानादि अनंत गुणों की चैतन्यऋद्धि का भंडार है।

प्रश्न— चौदह ब्रह्मांड का विस्तार कितना ?

उत्तर—चौदह ब्रह्मांड का विस्तार 343 घन राजू है। (असंख्यात योजन का एक राजू होता है)। समस्त जीव और अजीव पदार्थों का समूह ही चौदह ब्रह्मांड है, जिसकी ऊँचाई 14 राजू है। उसके बाहर सब ओर केवल अनंत आकाश है, उसे अलोक कहते हैं।

प्रश्न— जीव यहाँ से मरकर सीधे ही दूसरी गति में जाते हैं कि बीच में कहीं अन्य स्थान पर जाने के पश्चात् अपने कर्म अनुसार गति में जाते हैं ?

उत्तर—जीव एक गति में से मरकर शीघ्र उसी क्षण अन्य गति में अवतार धरता है; बीच में कहीं अन्य स्थान पर नहीं जाता। दोनों गति के बीच एक समय का भी अंतर नहीं है। एक जीव मनुष्यगति में से मरकर स्वर्ग में जाता हो, तब मार्ग में एक अथवा दो समय लगे उस समय भी उसे स्वर्ग का भव प्रारंभ हो जाता है। इसीप्रकार स्वर्ग में से मनुष्यभव में आनेवाले जीव को मार्ग में ही—अभी माता के पेट में नहीं आया हो—तो भी उसे मनुष्य गिना जाता है, उस समय वह मनुष्यगति में है।

प्रश्न— यह शरीर-मकान-पैसा-कुटुंब कुछ भी आत्मा का नहीं है, तो जगत में आत्मा का क्या है ?

उत्तर—आत्मा का ज्ञान! ज्ञान के साथ प्रभुता, सुख, आनंद, स्वच्छता, स्वाधीनता, परम शांति—इसप्रकार आत्मा में अनंत वैभव है। ●●

'आत्मधर्म' आजीवन सदस्य योजना

आत्मधर्म मासिक-पत्र आज 28वाँ वर्ष में है। इसके पत्र के छह हजार ग्राहक गुजराती-हिन्दी में हैं। पत्र अधिक से अधिक विकसित हो और उसके स्थायी ग्राहकों को भी प्रतिवर्ष शुल्क भेजने का कष्ट न हो तथा संस्था को भी व्यवस्था में सुविधा रहे ऐसा निर्णय करके 101) रुपये की आजीवन सदस्य योजना प्रांरभ की गई है। ऐसे सदस्यों को बिना वार्षिक शुल्क लिये आत्मधर्म आजीवन भेजा जायेगा। जो सज्जन इस योजना से लाभ उठाना चाहे वे निम्न पते पर 101) रुपये भेजकर इस योजना में शीघ्र सम्मिलित हो जायें। यह योजना गुजराती तथा हिन्दी दोनों भाषाओं के 'आत्मधर्म' के लिये है।

पता—श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र) (जिला भावनगर)

आजीवन सदस्यों की शेष नामावली

42. श्री बसंतकुमार जैन, पो. जतारा (म.प्र.)
43. श्री होंसीलाल बंसीलाल सर्राफ, मलकापुर (महा)
44. श्री प्रकाशचंद शीलचंद जैन, दिल्ली
45. श्री दिगम्बर जिनमंदिर, दिल्ली
46. श्री पवनकुमार जैन, दिल्ली-6
47. श्री लाला पृथ्वीचंद रामकुमारजी जैन, दिल्ली-6
48. श्री मानकचंदजी जैन, दिल्ली-6
49. श्री रतनलालजी श्रीपाल जैन, दिल्ली-6
50. श्री भीमसेनजी जैन सराफ, दिल्ली-6
51. श्री लाला नरेशचंदजी जैन, दिल्ली-6
52. श्री विमलप्रसादजी जैन, दिल्ली-6
53. श्री लाल सूरजमलजी सुमेरचंदजी, दिल्ली-6
54. श्री सोहनलालजी प्रेमनारायण जैन, दिल्ली-6
55. श्री तिलोकचंदजी जैन, दिल्ली-7

56. श्री प्रेमचंदजी जैन, दिल्ली–6
57. श्री मातेश्वरी सुबोध जैन, दिल्ली–6
58. श्री नरेन्द्रकुमार जैन, नयी दिल्ली–5
59. श्री दिगम्बर जैन खंडेलवाल पंचायत वैद्यवाड़ा, दिल्ली–5
60. श्री नन्नुमलजी जैन जोहरी, दिल्ली–6
61. श्री धन्नादेवी धर्मपत्नी श्री कैलाशचंदजी जैन, दिल्ली–7
62. श्री बलवंतराय पद्मचंदजी जैन, दिल्ली–7
63. श्री नानगराम एंड कम्पनी, दिल्ली–7
64. श्री हिस्वचंदजी कंजीलालजी जैन, छिंदवाड़ा (म.प्र.)
65. श्री गणपत सनाया मीरजे, कोल्हापुर
66. श्री राजमलजी काशलीवाल, ब्यावर (राज.)
67. श्रीमती धनकुंवर बहिन धर्मपत्नी श्री पुनमचंदजी रहावत, पोस्ट कल्यानपुर, ता. खरेडवा (राज.)
68. श्री रमेशचंद्र सोगानी, कलकत्ता–7
69. श्री दीपचंदजी सेठिया, सरदारशहर (राज.)
70. श्री खडमलजी गणपतलालजी विजयवर्गीय, ग्वालियर (म.प्र.)
71. श्री वच्छराजजी सरावगी, बी–6, पृथ्वीराजमार्ग, जयपुर–1 (राज.)
72. श्री सुनीलकुमार मांगीलालजी जैन, इंदौर (म.प्र.)
73. श्री चत्रभुज पन्नालालजी जैन, पोस्ट बाबई (जिला होशंगाबाद)
74. श्री श्री सिंघई धन्यकुमारजी जैन, छिंदवाडा (म.प्र.)
75. डॉ. धरमचंदजी जैन, ठि. रामगंज जिनमंदिर के पास, पोस्ट खंडवा (म.प्र.)
76. श्री विजयकुमार पटौदी सवाई सिंघई श्री धन्यकुमार जैन (छिंदवाड़ा) म.प्र.
77. श्रीमती गेंदाबाई धर्मपत्नी श्री भूरालालजी जैन, गुना (म.प्र.)
78. श्री विजयकुमारजी जैन टोंग्या, ठि. विजय स्टेट–राजाधिराजमार्ग, पोस्ट मथुरा (उ.प्र.)
79. दिगम्बर जैन मंदिर, सेक्टर नं. 6, पोस्ट भिलाई (दुर्ग) म.प्र.
80. श्री कल्याणकुमार जैन, दिल्ली–6

81. श्रीमती वीणाबहेन सर्राफ C/O श्री अशोकभाई मलकापुरवाला,
गणेश भुवन, पोस्ट खंडवा (म.प्र.)
82. श्री सीमंधरजी जैन, शिक्षक, खंडवा (म.प्र.)
83. श्रीमती मालतीबाई हस्ते निर्मलकुमार जैन, खंडवा (म.प्र.)
84. श्रीमती चंपाबाई जैन श्री प्रकाशचंदजी जैन, खंडवा (म.प्र.)
85. श्री मोतीलाल गुलाबशाजी जैन, मलकापुर (महा.)
86. श्री उमरावबेन रा. श्री गोवर्धनजी, राजनांदगांव (म.प्र.)
87. श्री चंद्रकला बहिन, पोस्ट-भिलाई (दुर्ग) म.प्र.
88. श्री कमला पाटनी, छिंदवाडा (म.प्र.)
89. श्री डॉ. सुमेरचंद जैन, दमोह (म.प्र.)
90. श्री चौ. प्रकाशचंदजी जैन, सागर (म.प्र.)
91. श्री सतेन्द्रकुमार जैन, दिल्ली-31
92. चोखलिया मथुरालालजी, इंदौर (म.प्र.)
93. श्री धनपालसिंह सर्राफ जैन, हरियाणा
94. श्रीमती इंदिरा जमनादास शाह, घाटकोपर, मुम्बई
95. श्री रसीकलाल नागरदास मोदी, माटुंगा
96. श्री कुसुमलताबहिन पाटनी, छिंदवाड़ा (म.प्र.)
97. श्रीमती इंदरचंदजी हजारीमलजी काका, इंदौर (म.प्र.)
98. श्री केसरीमलजी पाटनी, ग्वालियर (म.प्र.)
99. श्री भगवानदास शोभालालजी जैन, 360, चमेली चौक, सागर (म.प्र.)
100. श्री दीपचंदजी भोगीलालजी जैन भदावत, पोस्ट उदयपुर (राज.)
101. श्री महेन्द्रकुमारजी मलैया सागर (म.प्र.)
102. चौधरी श्री नाथूरामजी मानकचोकवाले, सागर (म.प्र.)
103. श्री नेमचंदजी कमलकुमारजी जैन, सागर (म.प्र.)
104. श्री प्रदीपकुमारजी जैन, पोस्ट पीपरीया (होसंगाबाद)
105. श्री आदित्यकुमार जैन, सागर (म.प्र.)

106. श्री वेदयजी लोहाडे ह. जेचंदजी जैन लोहाडे, पोस्ट हैदराबाद (दक्षिण)
107. श्री दिगम्बर जिन मंदिर, पोस्ट रायपुर (म.प्र.)
108. श्री दिगम्बर जिनमंदिर, पोस्ट दुर्ग (म.प्र.)
109. श्री प्रकाशवती भीखुराम जैन, दिल्ली-6
110. श्री दिगम्बर जिनमंदिर, दीवानजी वृद्धिचंदजी का मंदिर,
घी-वालों का रास्ता, जयपुर (राज.)

स्वरूप को साधने का उत्साह

चैतन्य की बात सुनते ही आत्मार्थी को अंदर से रोम-रोम पुलकित हो जाता है... असंख्यात प्रदेशी आत्मा चमक उठता है कि वाह! अपने आत्मा की यह अपूर्व बात मुझे सुनने को मिली। कभी नहीं सुना था ऐसा अपना स्वरूप आज सुनने में आया, राग से भिन्न ही स्वरूप है। इसप्रकार अंतर स्वभाव का उल्लास लाकर और बहिर्भावों का उत्साह छोड़कर जिसने स्वभाव का श्रवण किया उसका बेड़ा (नाव) पार! उसके भाव में अपूर्व अंतर पड़ गया, स्वभाव और परभाव के बीच थोड़ी दरार पड़ गयी, वह अब दोनों को जुदा अनुभव करके ही रहेगा।

ऐसी अध्यात्म की बात सुनानेवाले संत गुरु भी महा भाग्य से मिलते हैं। अपने सिवाय दूसरे सबकी प्रीति छोड़कर मुझे तो ऐसा निजस्वरूप समझना ही है, इसका ही अनुभव करना है, ऐसी गहरी उत्कंठा जगाकर, उपयोग को उस तरफ स्थिर करके, जिस जीव ने सुना वह जीव स्वरूप को साधने के उत्साह में आगे बढ़कर जरूर स्वानुभव करेगा।

धन्य है उस अध्यात्म-रसिक जीव को!

विविध समाचार

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी सुख-शांति में विराजमान हैं। छह दिन का बम्बई तथा बैंगलोर का संक्षिप्त विहार-कार्यक्रम पूर्ण करके पूज्य स्वामीजी तारीख 26के प्रात: 9 बजे सोनगढ़ पधारे और भक्तों ने हार्दिक स्वागत किया। सवेरे तथा दोपहर के प्रवचनों का एवं रात्रिचर्चा का कार्यक्रम यथावत् चलने लगा है।

फाल्गुन शुक्ला दोज श्री जिनमंदिर में सीमंधर प्रभु की प्रतिष्ठा का मंगल दिन था, जो बड़े उल्लासपूर्वक मनाया गया। सवेरे सीमंधरादि भगवंतों की भक्तिभाव से पूजन हुई थी; तथा सोनगढ़ में जो भव्य परमागम-मंदिर बन रहा है, उसमें आज गुरुदेव का प्रथम बार ही मंगल-प्रवचन हुआ; पश्चात् सीमंधर प्रभु की रथयात्रा निकाली गयी। परमागम-मंदिर में प्रभुजी का अभिषेक-पूजन हुआ। दोपहर को 12.15 बजे श्रीसमयसार उत्कीर्णित हुई प्रथम संगमरमर की शिला पूज्य गुरुदेव के मंगल हस्त से परमागम मंदिर की दीवार में लगवायी गई उस समय मुमुक्षु भाई-बहनों में उत्साहपूर्ण वातावरण था। पूज्य बेनश्री-बेन भी जिनवाणी की उमंगभरी भक्ति गवाकर आनंदोल्लास में वृद्धि करती थीं। इस कार्य में स्व. भाई श्री चंद्रकांत हरिलाल दोशी के कुटुंबीजनों ने बड़े उत्साह से भाग लिया था। स्व. श्री चंद्रकांतभाई के लघुभ्राता श्री नौतमभाई ने इस अवसर की खुशी में अच्छी रकम का दान दिया था। अन्य मुमुक्षु भाईयों ने भी उत्साह प्रदर्शित किया था। संगमरमर में परमागम उत्कीर्ण करने का कार्य चल रहा है। श्री पंचास्तिकाय, श्री समयसार तथा श्री प्रवचनसार का कार्य पूर्ण होकर श्री नियमसार चालू हो गया है। आशा है अप्रैल के अंतिम सप्ताह में पाँचों परमागम उत्कीर्ण होने का कार्य पूरा हो जायेगा।

घाटकोपर (बम्बई)—सर्वोदय अस्पताल के जिनालय की प्रथम वर्षगाठ के अवसर पर आध्यात्मिक संत पूज्य श्री कानजीस्वामी को विशेषरूप से आमंत्रित किया था। बम्बई की जनता ने 4 दिन तक पूज्य स्वामीजी के आध्यात्मिक प्रवचनों का लाभ लिया। पूज्य स्वामीजी ने बम्बई के सभी जिनमंदिरों के दर्शन किये थे और बोरीवली स्थित 'त्रिमूर्ति'

भगवंतों के दर्शन करके हर्ष व्यक्त किया था। सर्वोदय अस्पताल के संचालक श्री गौतमभाई ने सारी व्यवस्था बड़े अच्छे ढंग से की थी।

बैंगलोर—यहाँ श्री दिगम्बर जिनमंदिर की अत्यंत आवश्यकता थी, जिसकी पूर्ति शीघ्र ही होनेवाली है। सेठश्री जुगराजजी ने सोनगढ़ के संत पूज्य श्री कानजीस्वामी को विशेष आमंत्रण देकर तारीख 23-3-73 को बैंगलोर बुलाया और उनकी छत्रछाया में दिनांक 24-3-73 को श्री समवसरण मंदिर तथा श्री स्वाध्यायमंदिर की शिलान्यास-विधि प्रसिद्ध आध्यात्मिक प्रवक्ता श्री डालचंदभाई के सुहस्त से सम्पन्न हुई; इस अवसर पर अनेक सज्जन महानुभाव पधारे थे। बैंगलोर के जैन समाज ने दो दिन तक पूज्य स्वामीजी के आध्यात्मिक प्रवचनों का लाभ लिया।

❀ ❀ ❀

मेहसाणा (उ. गुजरात)—यहाँ दिगम्बर जैन समाज के 28घर हैं। नया जिनमंदिर स्टेशन के पास ही है। श्री भाईलालभाई प्रमुख हैं। उनके विशेष अनुरोध पर 4 दिन के लिये मेहसाणा गया और पूज्य सवामीजी के टेपरिकार्डों द्वारा आध्यात्मिक प्रवचन सुनाये। शास्त्रसभा एवं शंका-समाधान आदि के भी कार्यक्रम चले। समाज में अच्छा उत्साह है।

झाबुआ (म.प्र.)—यहाँ दिगम्बर जैन समाज के आमंत्रण पर पाँच दिन का कार्यक्रम दिया। यहाँ भी लोगों में अच्छी जिज्ञासा है। —ब्रह्मचारी रमेशचंद्र जैन

❀ ❀ ❀

मध्यप्रदेश में लश्कर निवासी श्री पंडित धन्नालालजी एवं श्री पंडित गोविन्ददासजी खड़ेरीवाले अच्छा प्रचार-कार्य करते रहते हैं। पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों के टेपरिकार्डों द्वारा तथा स्वयं के प्रवचनों से लोगों को आध्यात्मिक ज्ञान कराते हैं। पिछले दिनों श्री पंडित गोविन्ददासजी ने अनेक ग्रामों में प्रचार-कार्य किय। वे लिखते हैं कि पिछले दिनों किशुनगंज, बम्होरी, सुनवाहा, तिगोडा, बराज, कारीटोरन, बड़ागाँव, गढ़ाकोटा आदि ग्रामों में गया और कार्यक्रम प्रस्तुत किये। लोगों में अध्यात्म की अच्छी रुचि है। पश्चात् दिहावला (म.प्र.) वहाँ से वाँसगढ़ तथा गोवट होकर करेली जा रहा हूँ। करेली में जैन शिक्षण-शिविर लग रहा है। इस भ्रमण में जहाँ-जहाँ जैन पाठशालाएँ हैं, उन्हें सुचारूरूप से चलाने की प्रेरणा देता हूँ, तथा जहाँ

जैन पाठशाला नहीं हैं, वहाँ नई पाठशालाएँ खुलवाने का प्रयत्न करता हूँ। —गोविन्ददास जैन

दिहावला (म.प्र.)—समाज के विशेष आमंत्रण पर श्री पंडित धन्नालालजी तारीख 24-2-73 को पधारे और पाँच दिन तक हमें धर्मामृत का पान कराया। जैन शिक्षण-शिविर भी चलाया। यहाँ श्री सिद्धचक्र विधान एवं वेदी-प्रतिष्ठा-महोत्सव आठ दिन तक चला। तारीख 26-2-73 को श्री पंडित गोविन्ददासजी खड़ेरीवाले पधारे। उन्होंने प्रतिदिन चार घंटे का कार्यक्रम चार दिन तक दिया। प्रवचनों एवं तत्त्वचर्चा से समाज ने अपूर्व लाभ लिया। यहाँ श्री वीतराग विज्ञान पाठशाला श्री पंडित ताराचंदजी द्वारा सुचारुरूप से चलायी जारही है।

बाँसगढ़ (म.प्र.)—यहाँ की समाज के विशेष अनुरोध पर श्री पंडित धन्नालालजी पधारे और चार दिन तक प्रतिदिन चार घंटे का आध्यात्मिक प्रवचनों का सुंदर कार्यक्रम प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् पंडित श्री गोविन्ददासजी पधारे और पाँच दिन तक उनका भी सफल कार्यक्रम रहा। समाज ने अच्छा लाभ लिया और विद्वानों के तथा पूज्य स्वामीजी के प्रति आभार प्रदर्शित किया।

❀ ❀ ❀

वासीम (महा.)—यहाँ श्री अंबेश्वर पार्श्वनाथ दिगम्बर जिनमंदिर के जीर्णोद्धार का शुभारंभ तारीख 22-2-73 को श्री धन्यकुमारजी बेलोकर तथा ब्रह्मचारी पंडित दीपचंदजी तथा पुसव निवासी सेठ श्रीकुमारजी अहाले के शुभहस्त से हुआ। श्री पंडित उत्तमचंदजी सिवनी से पधारे थे। जिनेन्द्रपूजा एवं प्रवचनादि का अच्छा कार्यक्रम हुआ।

—दिगम्बर जैन समाज, वासीम

फालेगाँव-देशमुख (महा.)—यहाँ की जैनसमाज के प्रमुख सज्जनों तथा श्री ब्रह्मचारी पंडित धन्यकुमारजी बेलोकर एवं श्री नवनीतलाल चुनीलाल जवेरी बम्बईवालों के सहयोग से तारीख 7-4-73 से तारीख 16-4-73 तक शिक्षण शिविर चलेगा। आवास एवं भोजनादि की सुविधा फालेगाँव जैनसमाज द्वारा की जायेगी। विद्वान वक्ताओं को आमंत्रित किया जा रहा है।

— आवश्यक निवेदन —

आजकल सोनगढ़ में श्री परमागम मंदिर का कार्य जोरशोर से चल रहा है और श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के कार्यालय में बहुत काम रहता है। जिससे पुस्तकें तथा आत्मधर्म न मिलने की शिकायतों पर यथाशीघ्र ध्यान नहीं दे पाते। ग्राहक महानुभावों से निवेदन है कि इसप्रकार होनेवाले विलंब के लिये वे हमें क्षमा करें। हम शीघ्र ही योग्य व्यवस्था के लिये प्रयत्नशील हैं।

व्यवस्थापक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़

❀ ❀ ❀

वैशाख शुक्ला दोज, कलकत्ता में

पूज्य श्री कानजीस्वामी कलकत्ता व गौहाटी पधारेंगे

देश के पूर्वांचल प्रदेश में स्थित औद्योगिक महानगरी कलकत्ता में आध्यात्मिक संत पूज्य श्री कानजीस्वामी की 84वीं जन्मजयंति का उत्सव मिती बैसाख शुक्ला द्वितीया दिनांक 4-5-73 को मनाने का निश्चित हुआ है। इस पावन प्रसंग पर तारीख 28-4-73 से 4-5-73 तक सप्त दिवसीय कार्यक्रम बनाया गया है। पूज्य गुरुदेव तारीख 28-4-73 को कलकत्ता पधारेंगे एवं 4-5-73 तक कलकत्ता विराजेंगे। पश्चात् 5-5-73 को विमान द्वारा गौहाटी पधारेंगे, वहाँ तीन दिन ठहरने का प्रोग्राम है।

अतः समस्त धर्मस्नेही भाई-बहिनों से विनती है कि इस 84वीं जन्म-जयंति पर पधारकर चौरासी के चक्कर का विनाश करनेवाली पूज्य गुरुदेव की अमृतभरी वाणी का लाभ लेवें।

ली—कलकत्ता मुमुक्षु मंडल

तार का पता : 'कुन्दकुन्द'
टेलीफोन : 335048

कलकत्ता का पता—
रमणीकलाल वीरचंद एंड कं.
14 नुरमल लोहीया लेन, कलकत्ता-7

भारतवर्ष के सुदुर पूर्व में स्थित आसाम, नागालैंड, मणिपुर, मेघालय और त्रिपुरा वासियों का परम अहोभाग्य है कि परम पूज्य सतपुरुष श्री कानजीस्वामी अध्यात्म-गंगा बहाने हेतु आसाम की राजधानी गौहाटी नगरी में दिनांक 5, 6, और 7 मई 1973 को पधार रहे हैं। पूज्य स्वामीजी का इस अंचल में यह सर्वप्रथम आगमन है। जो कि ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

अतः सभी साधर्मी भाईयों से विनम्र निवेदन है कि पूज्य स्वामीजी की अध्यात्म से ओतप्रोत वाणी का अवश्य लाभ लेवें और अधिक से अधिक संख्या में पधारकर जैनधर्म की प्रभावना में वृद्धि करें। आगंतुक बंधुओं की आवास एवं भोजन की समुचित व्यवस्था रहेगी। गौहाटी आने का मार्ग निम्नप्रकार है—

बम्बईवालों के लिये—(1) इलाहाबाद मेल में लखनऊ की बोगी लगती है। लखनऊ से गौहाटी के लिये दो गाड़ियाँ बिना बदली के चलती हैं।

(2) बम्बई से वाया नागपुर हावडा मेल से कलकत्ता आयें, वहाँ से कामरूप एक्सप्रेस मिलती है। तथा 'बोइंग प्लेन' द्वारा आने में सुबह छह बजे एवं शाम को 3 बजे चलकर 45 मिनिट में पहुँच सकते हैं।

गुजरातवालों के लिये—(1) वीरमगाँव से हावड़ा कोच में कलकत्ता आकर गौहाटी के लिये ऊपर लिखित रास्ता है। अहमदाबाद और महेसाना से दिल्ली की तीन गाड़ियाँ मिलती हैं। नई दिल्ली से आसाममेल ए-40 सुबह चलती है जो बरौनी बदलकर गौहाटी 46 घंटे में पहुँचाती है।

श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल गौहाटी,
C/o. एयर आसाम
फैन्सी बाजार, गौहाटी (आसाम)

फोन नं. 3221, 5501, निवास—5523
टेलीग्राम - 'Suniel', GAUHATI

आवश्यक सूचना

श्री वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड जयपुर द्वारा आयोजित ग्रीष्मकालीन पंचम प्रशिक्षण शिविर का आयोजन इस वर्ष 27 मई से 15 जून 1973 तक विदिशा (म.प्र.) में होगा,

अत: संस्थाधिकारियों से निवेदन है कि अपने अध्यापक बंधुओं को शिविर में प्रशिक्षणार्थ अवश्य भेजें। आगम अध्यापकों के भोजन एवं निवास का प्रबंध नि:शुल्क रहेगा।

मंत्री—परीक्षाबोर्ड

— नया प्रकाशन —

'पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व'

लेखक — डा. हुकमचंद भारिल्ल, जयपुर

प्रेस में छप रहा है, करीब एक माह के भीतर छप जायेगा। यह सीमित संख्या में ही छप रहा है और माँग बहुत है, अत: जिनके आर्डर आ चुके हैं, या आ रहे हैं, उन्हें क्रमश: भेजा जायेगा। जिन्हें आवश्यकता हो शीघ्र आर्डर दें। मूल्य लागत मात्र रखा जावेगा।

मंत्री—टोडरमल स्मारक भवन
ए-4, बापूनगर, जयपुर-4

भोपाल (म.प्र.)—स्थानीय धार्मिक सायंकालीन श्री वीतराग विज्ञान पाठशाला के तत्त्वावधान में आयोजित पर्यूषण पर्व के उपलक्ष में दिनांक 27-6-72 को कु० मंजू सोगानी के निर्देशन में 'सती चेलना' नाटक प्रस्तुत किया गया था।

समाज के प्रतिष्ठित एवं गणमान्य व्यक्तियों के अतिरिक्त संपूर्ण समाज ने नाटक को गंभीरता, भावभंगिमा, पृष्ठभूमि तथा अन्य सभी तत्त्वों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। श्री वीतराग विज्ञान पाठशाला के छात्र-छात्राओं ने पाठशाला के लक्ष्य को बहुत ही अनुपम ढंग से चित्रित किया और समाज के सामने यह प्रस्तुत किया कि वास्तव में जैनधर्म में कितनी सार्थकता और गंभीरता है।

मंत्री—
श्री वीतराग विज्ञान पाठशाला

आत्मधर्म मासिक-पत्र के स्वामित्व आदि की घोषणा

प्रकाशन का स्थान—दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

प्रकाशन अवधि—प्रत्येक अंग्रेजी माह की 25वीं तारीख

प्रकाशक—श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक—मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

सम्पादक—ब्रह्मचारी हरिलाल जैन तथा ब्रह्मचारी गुलाबचंद जैन,

दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंडल, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

तंत्री—श्री पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार

राष्ट्रीयता—भारतीय

स्वत्वाधिकार—दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मैं घोषित करता हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सही हैं।

तारीख 25-3-73

व्यवस्थापक—

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़

अपूर्व शांति का उपाय दर्शानेवाले प्रकाशन

1	समयसारजी	7.50
2	समयसारजी पद्यानुवाद	0.50
3	समयसारजी कलश–टीका (राजमलजी कृत)	2.75
4	समयसारजी नाटक (बुद्धिलालजी कृत टीका)	प्रेस में
5	समयसारजी प्रवचन (भाग–1)	4.50
6	समयसारजी प्रवचन (भाग–2)	4.50
7	समयसारजी प्रवचन (भाग–3)	प्रेस में
8	प्रवचनसार	प्रेस में
9	नियमसार	प्रेस में
10	नियमसार पद्यानुवाद	0.30
11	पंचास्तिकाय	3.50
12	द्रव्यसंग्रह	1.20
13	मोक्षशास्त्र (सूत्रजी) (बड़ी टीकाओं का संग्रह आवृत्ति 4)	6.00
14	अष्टपाहुड़ श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव कृत (भाषा टीका स्व. पं. जयचंदजी)	प्रेस में
15	पुरुषार्थसिद्धयुपाय (जिनागम रहस्यकोश)	2–50
16	धर्म की क्रिा	1.60
17	सम्यग्दर्शन भाग–1	2.50
18	ज्ञानस्वभाव और ज्ञेयस्वभाव	3.00
19	मोक्षमार्गप्रकाशक	छपाना है
20	अनुभवप्रकाश	0.65

21	अपूर्व अवसर प्र. तथा आचार्यकृत द्वादशानुप्रेक्षा–सामायिक तथा स्व. पंडित गुमानीरामजी तथा बुधजनजी कृत समाधि–मरण तथा पंडित जयचंदजी छाबड़ाजी बारह भावना संग्रह ग्रंथ	1.65
22	अष्ट–प्रवचन (भाग–1)	1.12
	अष्ट–प्रवचन (भाग–2)	1.50
23	चिद्‌विलास	1.50
24	छहढाला (सचित्र)	1.00
25	छहढाला मूल बड़े टाइप में	0.20
26	आत्मसिद्धि शास्त्र–अमितगति सामायिक पाठ–छहढाला सुंदरतम और 32 पेजी जेबी साईज 100 प्रतियाँ मंगाने पर पाँच प्रतिशत कमीशन	0.40
27	जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग–1	1.00
28	जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग–2	1.10
29	जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग–3	प्रेस में
30	मुक्ति का मार्ग	0.75
31	मूल में भूल	1.00
32	भेदविज्ञानसार (समयसार सर्व–विशुद्धि अधिकार पर प्रवचन)	2.00
33	लघु जैनसिद्धान्त प्रवेशिका	0.25
34	सैद्धांतिक चर्चा लेख नं.7 से 14	1.75

35	सन्मति संदेश (महत्त्वपूर्ण विशेषांक)	0.50
36	शब्दकोष हिन्दी-गुजराती	प्रेस में
37	तत्त्वनिर्णय	0.20
38	शास्त्र समझने की पद्धति	0.12
39	निमित्त-नैमित्तिक संबंध क्या है ?	0.15
40	भगवान महावीर	0.20
41	अध्यात्मवाणी, भाग-2	0.85
	अमृतवाणी, भाग-3 (शेष भाग अप्राप्य)	1.00
42	जैन बालपोथी (भाग-1)	0.25
43	जैन बालपोथी (भाग-2)	0.40
44	बालबोध जैन पाठमाला, भाग-1	0.45
45	बालबोध जैन पाठमाला, भाग-2	0.55
46	बालबोध जैन पाठमाला, भाग-3	0.55
47	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-1	0.55
48	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-2	0.75
49	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-3	0.75
50	तत्त्वज्ञान पाठमाला, भाग-1	1.00
51	वीतरागविज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	2.25
52	पंडित टोडरमलजी व्यक्तित्व-कर्तृत्व (शोध-प्रबंध)	प्रेस में
53	अर्चना (पूजा संग्रह)	0.20
54	सुंदर लेख (बालबोध, भाग-1)	0.35
55	ज्ञानानंद स्वभावी (कलेण्डर)	0.25
56	पंचम गुणस्थान की 11 प्रतिमाएँ	0.25
57	मोक्षमार्गप्रकाशक, अध्याय-9	0.75
58	श्रावकधर्म प्रकाश	2.00
59	सुंदर लेखन कॉपी	0.25
60	वीतराग विज्ञान (छहढाला अध्याय 1 पर प्रवचन छपवाना है)	
61	आत्मधर्म वार्षिक चंदा वैशाख से चैत्र तक	4.00
	आत्मधर्म आजीवन सदस्य	101.00
62	मंगल तीर्थयात्रा बड़ा सचित्र अंक जो 30) रुपये का (गुजराती भाषा में) ग्रंथ मात्र	6.00

प्राप्तिस्थान

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-5, बापूनगर
जयपुर-4 (राजस्थान)

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)
मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)